अध्याय 3

साम्राज्य और राज्य : छठी से 10वीं शताब्दी

> *भारत ने कभी भी अपनी अंतिम बात नहीं रखी। सभी स्थितियों में वह सतत है, निरंतर है एवं स्वयं को नवीनीकृत करता रहा है।*
>
> *– लुई रैनो एवं ज्याँ फिलियोजा (फ्रांसीसी भारतविद्)*

चित्र 3.1 — पल्लव वंश के नरसिंहवर्मन द्वितीय के काल में निर्मित मामल्लपुरम का तट मंदिर

महत्त्वपूर्ण प्रश्न ?

1. *इस काल को किन प्रमुख परिवर्तनों के लिए जाना जाता है?*
2. *इस काल के राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक घटनाक्रमों ने किस प्रकार भारत को प्रभावित किया?*
3. *इस काल के विदेशी आक्रमणों एवं अंतर्क्रियाओं का भारतीय समाज एवं राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ा?*

0784CH03

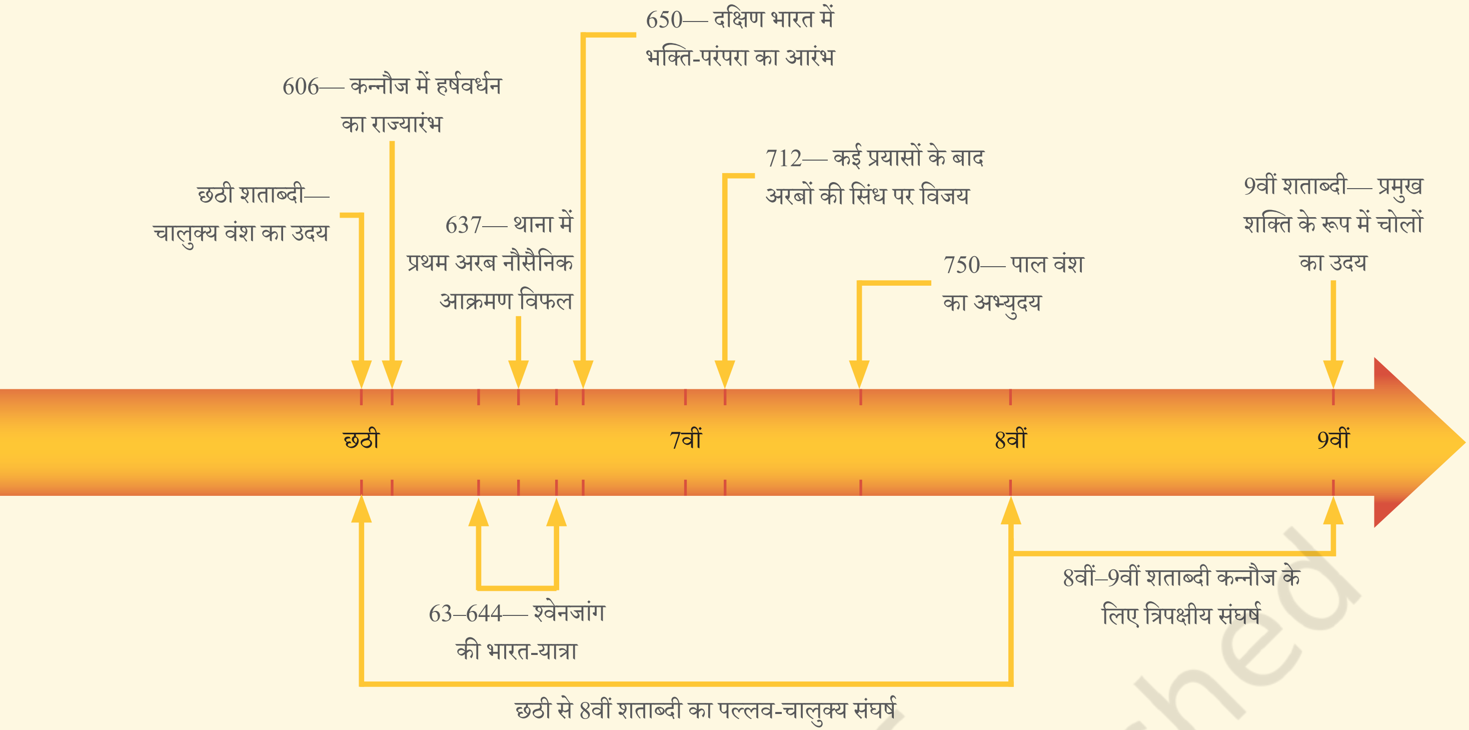
650— दक्षिण भारत में भक्ति-परंपरा का आरंभ
606— कन्नौज में हर्षवर्धन का राज्यारंभ
712— कई प्रयासों के बाद अरबों की सिंध पर विजय
9वीं शताब्दी— प्रमुख शक्ति के रूप में चोलों का उदय
छठी शताब्दी— चालुक्य वंश का उदय
637— थाना में प्रथम अरब नौसैनिक आक्रमण विफल
750— पाल वंश का अभ्युदय
छठी
7वीं
8वीं
9वीं
8वीं–9वीं शताब्दी कन्नौज के लिए त्रिपक्षीय संघर्ष
63–644— श्वेनजांग की भारत-यात्रा
छठी से 8वीं शताब्दी का पल्लव-चालुक्य संघर्ष

चित्र 3.2

इस अध्याय और अगले अध्याय में 600 सा.सं. के लगभग गुप्तकाल के अंत से लगभग 1200 सा.सं. तक भारत की दृश्यावली का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है। इन छह शताब्दियों को सकल रूप में अनेक नाम दिए गए हैं— 'उत्तर-शास्त्रीय', 'पूर्व मध्यकालीन' आदि। हमें यहाँ इस प्रकार की शब्दावली के प्रयोग की आवश्यकता तब तक नहीं है, जब तक भारत का वृहद कालक्रम हमारे मन-मस्तिष्क में है। 8वीं कक्षा में हम अग्रिम शताब्दियों का अन्वेषण करेंगे, जिनमें भारत में ब्रिटिश राज के औपनिवेशिक काल और अंततः इस उपनिवेशवादी शासन से मुक्ति के संघर्ष की भारत की स्वतंत्रता के रूप में परिणति है।

कल्पना कीजिए कि आप लगभग 1,500 वर्ष पूर्व उत्तर भारत में हैं। शक्तिशाली गुप्त साम्राज्य (इस पाठ्यपुस्तक के भाग 1 में 'गुप्त काल' का अध्याय देखिए) अपना वर्चस्व खो चुका है। आप उपमहाद्वीप में रोमांचक भ्रमण करने वाले एक युवा यात्री हैं। आपका पहला ठहराव गंगा के किनारे स्थित एक नगर कन्नौज है, जहाँ एक शक्तिशाली राजा कवियों और विद्वानों का संरक्षक है। कुछ सप्ताह के उपरांत आप दक्कन में स्थित चालुक्य राज्य में पहुँचते हैं, जहाँ आप भव्य मंदिर और चहल-पहल वाले नगर देखते हैं। सुदूर दक्षिण मामल्लपुरम (महाबलीपुरम) में पल्लव शासक चट्टानों से संपूर्ण मंदिरों को तराश रहे हैं, जबकि बंगाल में पाल शासक विक्रमशिला जैसे महान विश्वविद्यालयों को संरक्षण दे रहे हैं। अब आप भारत में विशाल साम्राज्य ही नहीं अपितु अनेक शक्तिशाली

राज्यों को भी देखते हैं। कुछ इसे राजनैतिक प्रतिद्वंद्विता और अव्यवस्था की अवधि मानते हैं किंतु जब आप यात्रा कर रहे हैं तब आप कुछ अलग देखते हैं, जैसे— नए विचारों, कला और संस्कृति से ओत-प्रोत क्षेत्र, जो भिन्नता तो लिए हुए हैं तथापि अखिल भारत के अभिन्न भाग हैं।

क्या वास्तविकता में यह शक्तिशाली साम्राज्यों के युग का अंत है अथवा एक नए युग का उषाकाल है? आइए, उस कालखंड का पुनरावलोकन करें। जैसा कि आप मानचित्र (चित्र 3.3) में देख पा रहे हैं कि गुप्त शासक जा चुके हैं किंतु यह काल विभिन्न क्रियाकलापों से जीवंत एवं गतिशील है। अनेक क्षेत्रीय शक्तियों का उदय हो चुका है।

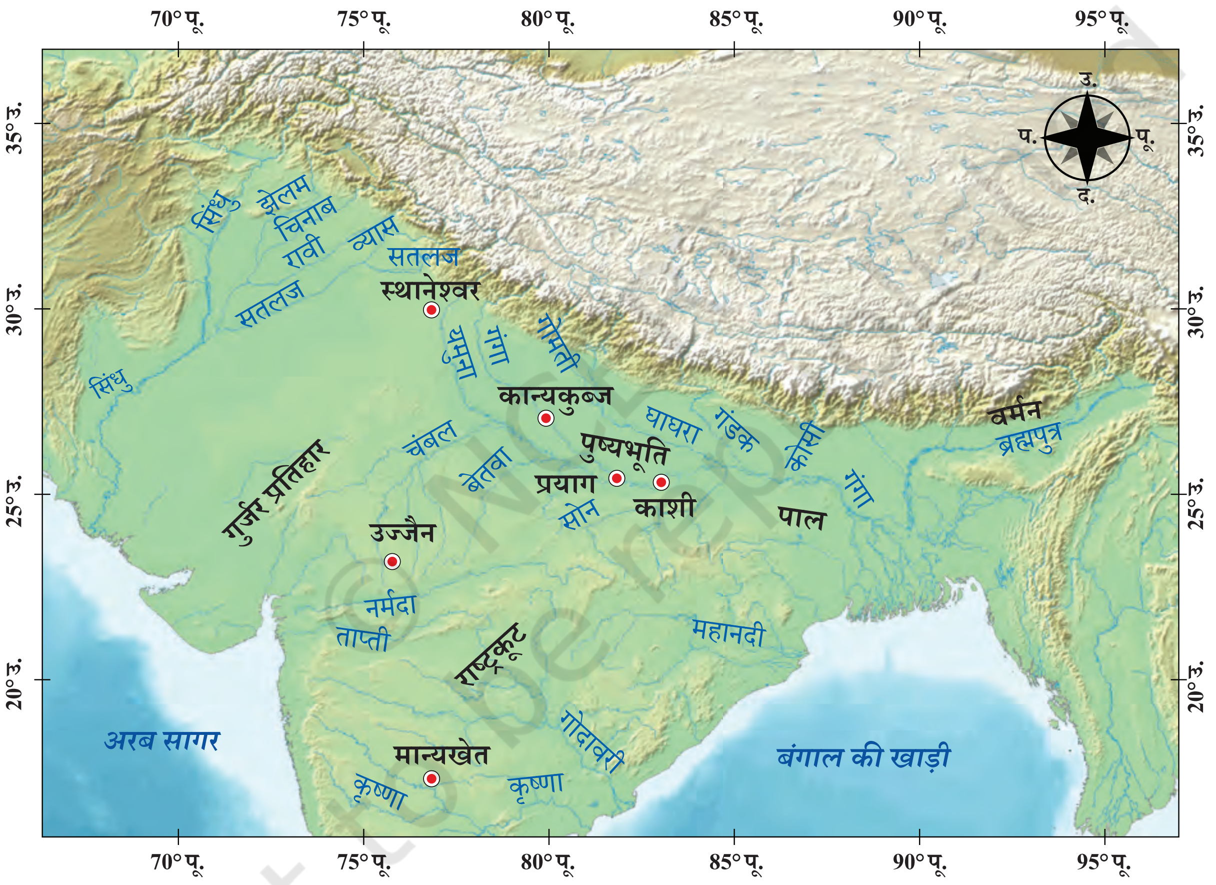
70° पू.
75° पू.
80° पू.
85° पू.
90° पू.
95° पू.
35° उ.
30° उ.
25° उ.
20° उ.
उ.
प.
पू.
द.
सिंधु
झेलम
चिनाब
रावी
व्यास
सतलज
सतलज
स्थानेश्वर
यमुना
गंगा
गोमती
सिंधु
कान्यकुब्ज
घाघरा
गंडक
कोसी
वर्मन
ब्रह्मपुत्र
पुष्यभूति
चंबल
बेतवा
प्रयाग
काशी
सोन
गंगा
पाल
गुर्जर प्रतिहार
उज्जैन
नर्मदा
ताप्ती
राष्ट्रकूट
महानदी
अरब सागर
गोदावरी
मान्यखेत
कृष्णा
कृष्णा
बंगाल की खाड़ी

चित्र 3.3 — 7वीं शताब्दी उपरांत उत्तर एवं प्रायद्वीपीय भारत के कुछ राजवंशों का एक सरलीकृत मानचित्र

महाराजाधिराज श्रीहर्ष

इस काल में जब हम उत्तर भारत को देखते हैं, तब हम कन्नौज में वर्ष 606 सा.सं. में राज्यारोहण करने वाले एक विलक्षण शासक **हर्षवर्धन** को पाते हैं। वह **पुष्यभूति** (अथवा वर्धन) वंश से थे, जिनकी राजधानी पूर्व में स्थानेश्वर (वर्तमान हरियाणा का थानेसर) थी।

आइए पता लगाएँ

क्या आपको स्मरण है कि मौर्य एवं गुप्त साम्राज्यों की राजधानी पहले कहाँ स्थित थी? आपको क्या लगता है कि राजधानी के इस परिवर्तन ने आगे चलकर उपमहाद्वीप की राजनीति को किस प्रकार प्रभावित किया होगा?

कन्नौज (प्राचीन नाम कान्यकुब्ज) वर्तमान उत्तर प्रदेश में है। यहाँ से शासन करते हुए हर्षवर्धन ने अपने साम्राज्य का उत्तर और पूर्वी भारत के बड़े भाग पर विस्तार किया। यद्यपि साम्राज्य के निश्चित विस्तार का क्षेत्र स्पष्टतया विदित नहीं है।

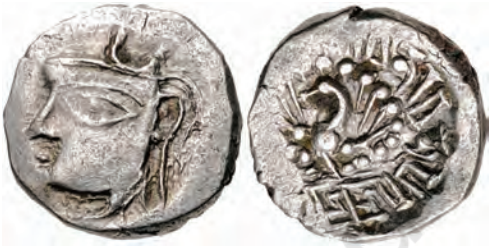

चित्र 3.4 — राजा हर्ष को दर्शाती हुई एक मुद्रा जिसके पृष्ठ भाग में पंख फैलाए एक मोर का चित्र है।

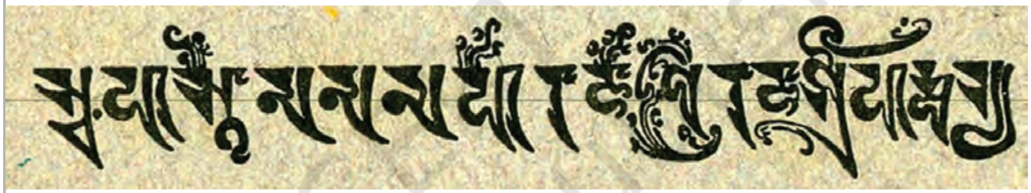

चित्र 3.5 — उत्तर प्रदेश के बांसखेड़ा से प्राप्त एक ताम्रपत्रीय अभिलेख। इसका विवरण नागरी लिपि में है, जो देवनागरी की पूर्ववर्ती लिपि है। इसमें उल्लेख है— 'स्वहस्तो मम महाराजाधिराजश्रीहर्षस्य' अर्थात महाराजाधिराज श्रीहर्ष के अपने हस्ताक्षर।

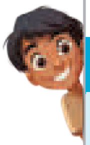

आइए पता लगाएँ

यदि आप देवनागरी लिपि जानते हैं, तो अपने शिक्षक की सहायता से 'हर्ष' के हस्ताक्षर (चित्र 3.5) में कुछ अक्षरों को पहचानने का प्रयत्न कीजिए।

हर्षवर्धन एक उत्कृष्ट कवि और नाटककार थे। ऐसा माना जाता है कि उन्होंने शास्त्रीय संस्कृत में तीन नाटकों की रचना की जिनमें राजसी जीवन के साथ प्रेम-कथाओं का सम्मिश्रण है तथा यज्ञ-त्याग एवं अन्य उच्च नैतिक मूल्यों से संबंधित विषय निहित हैं। यद्यपि, ये 'कथाएँ' हैं, तथापि इतिहासकार ऐसे साहित्य के माध्यम से उस काल की संस्कृति और समाज से संबंधित महत्त्वपूर्ण एवं रोचक विवरणों को उद्धृत करते हैं, जैसे— शासन-प्रणालियाँ, सामाजिक-विविधता, तकनीकें, भोजन और वस्त्र आदि।

not to be republished © NCERT

हर्ष ने बाणभट्ट जैसे विद्वानों को भी संरक्षण प्रदान किया। बाण ने *कादंबरी* नामक उपन्यास की रचना की। यह एक अत्यंत उत्कृष्ट साहित्यिक कृति है और विश्व के आरंभिक उपन्यासों में गिनी जाती है। उन्होंने हर्ष की जीवनी पर *हर्षचरितम्* की रचना की। अभिलेखों में हर्ष को शिवभक्त बताया गया है जबकि अन्य स्रोतों के अनुसार वे सभी मतों और संप्रदायों के प्रति सम्मानभाव रखते थे तथा बौद्ध धर्म से भी गहन रूप से जुड़े थे।

इसे अनदेखा न करें

7वीं शताब्दी के *कादंबरी* नामक उपन्यास का कथानक अत्यंत विस्तृत और जटिल है। इसमें उज्जयिनी के एक राजकुमार और स्वर्गलोक की अप्सरा कादंबरी के प्रेम की कथा है। इस कथा में उनका प्रेम कई जन्मों, स्वप्नों और दिव्यलोकों की गाथा है, जहाँ एक कथा के अंदर अन्य उपकथाएँ वर्णित हैं। इसके माध्यम से हमें राजसी जीवन, दर्शन, प्रकृति और सौंदर्यशास्त्र की झलक मिलती है।

अनेक अभिलेखों के अतिरिक्त इस काल में भारत आने वाले एक चीनी तीर्थयात्री का यात्रा-वृत्तांत एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत है। स्मरण कीजिए इस पाठ्यपुस्तक के प्रथम भाग में हम फाशिएन से मिल चुके हैं जिन्होंने 5वीं शताब्दी के गुप्त काल का बहुमूल्य विवरण दिया। अब दो शताब्दियों पश्चात श्वेनजांग (जिनका नाम पहले ह्वेनसांग लिखा जाता था) भारत की यात्रा पर निकले और 630 से 644 के मध्य उन्होंने उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों की यात्रा की। (इस पाठ्यपुस्तक के अध्याय 'भारत में कृषि की यात्रा' तथा कक्षा 6 की सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तक में 'भारत, अर्थात इंडिया' नामक अध्याय में संक्षेप में उनसे परिचय कराया गया था।) फाशिएन की ही भाँति इतनी लंबी और दुरूह यात्रा का उनका उद्देश्य पवित्र बौद्ध स्थलों की तीर्थयात्रा और भारतीय शिक्षकों से बौद्धमत सिद्धांतों को सीखना था। वे 600 से अधिक बौद्ध संस्कृत पांडुलिपियों को 20 घोड़ों पर लादकर चीन लेकर आए तथा उनका चीनी में अनुवाद प्रारंभ किया। उन्होंने अपनी यात्रा का एक सूक्ष्म वृत्तांत लिखा जिसमें उन्होंने जिन-जिन राज्यों की यात्रा की, वहाँ की राजनीति, कूटनीति, संस्कृति और धर्म के महत्त्वपूर्ण बिंदुओं को अभिलेखित किया। उनका यात्रा-वृत्तांत इस काल के इतिहासकारों के लिए एक महत्त्वपूर्ण सूचना-स्रोत है।

चित्र 3.6 — पूर्वी चीन की लांगमैन गुफाओं (बौद्ध मूर्तियों एवं उत्कीर्णनों का एक गुफा-समूह) में पिट्ठू लिए हुए श्वेनजांग की एक मूर्ति

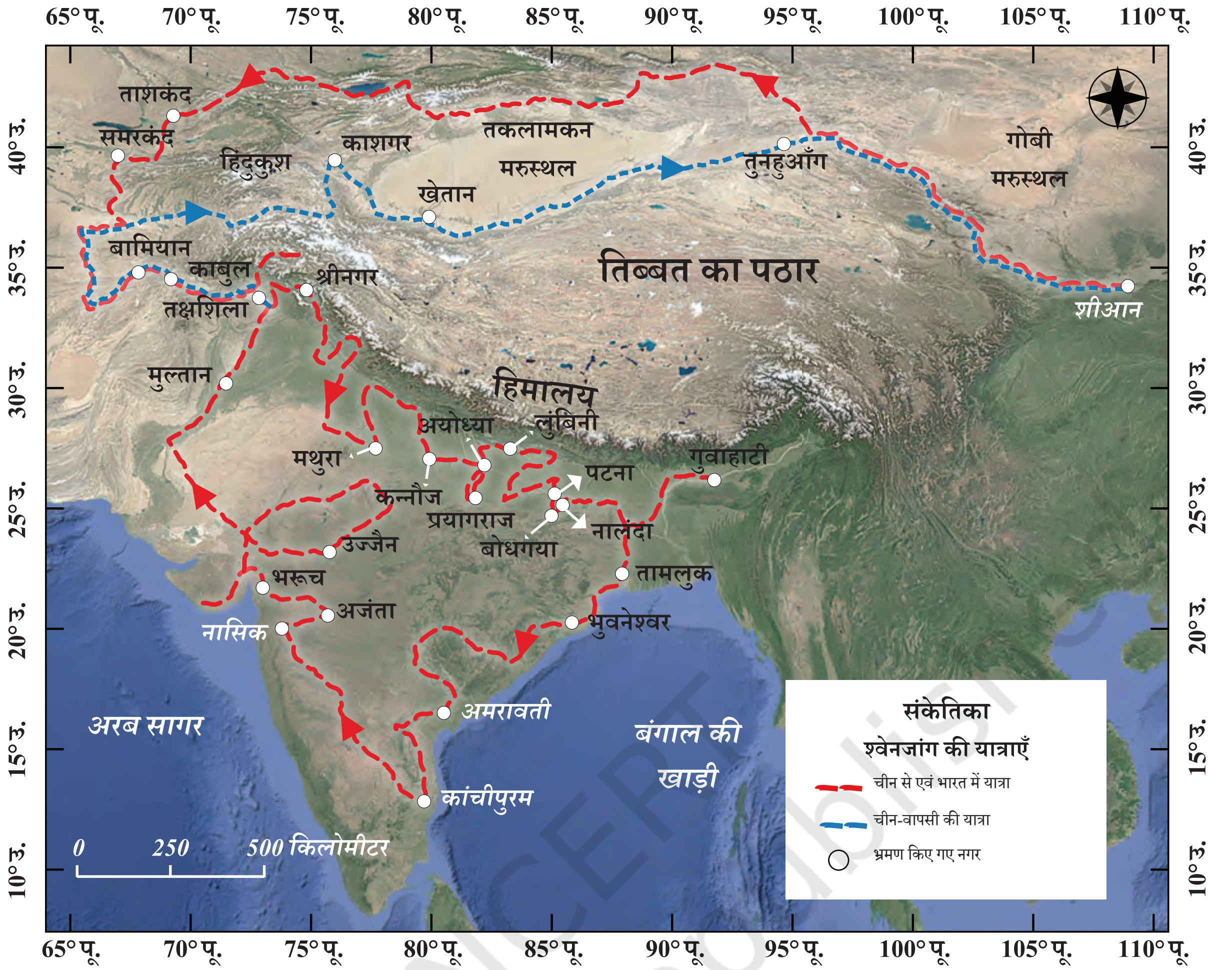
65° पू.
70° पू.
75° पू.
80° पू.
85° पू.
90° पू.
95° पू.
100° पू.
105° पू.
110° पू.
40° उ.
35° उ.
30° उ.
25° उ.
20° उ.
15° उ.
10° उ.
ताशकंद
समरकंद
हिंदुकुश
काशगर
तकलामकन
मरुस्थल
खेतान
तुनहुआँग
गोबी
मरुस्थल
बामियान
काबुल
तक्षशिला
श्रीनगर
तिब्बत का पठार
शीआन
मुल्तान
हिमालय
अयोध्या
लुंबिनी
मथुरा
कन्नौज
प्रयागराज
पटना
गुवाहाटी
नालंदा
बोधगया
उज्जैन
भरूच
अजंता
तामलुक
नासिक
भुवनेश्वर
अरब सागर
अमरावती
बंगाल की
खाड़ी
कांचीपुरम
0
250
500 किलोमीटर
संकेतिका
श्वेनजांग की यात्राएँ
चीन से एवं भारत में यात्रा
चीन-वापसी की यात्रा
○ भ्रमण किए गए नगर

चित्र 3.7 — श्वेनजांग का चीन से भारत आने एवं वापस जाने का यात्रा-मार्ग (इस मानचित्र में श्वेनजांग द्वारा भ्रमण किए नगरों के आधुनिक नाम दिए गए हैं।)

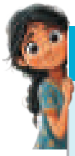

आइए पता लगाएँ

मानचित्र को देखते हुए (चित्र 3.7) क्या आप कुछ पर्वतीय दर्रे एवं मरुस्थल रेखांकित कर सकते हैं जहाँ से चीन और भारत के मध्य यात्रा करते हुए श्वेनजांग को गुजरना पड़ा?

क्या आप उन कुछ महत्त्वपूर्ण बौद्ध शैक्षणिक केंद्रों को भी ढूँढ़ सकते हैं जहाँ भारत में श्वेनजांग ने यात्रा की, क्या आप उनके महत्त्व के विषय में कुछ जानते हैं?

हर्षवर्धन ने चीन से आए हुए दो अन्य राजदूतों के साथ इस चीनी यात्री का अपनी सभा में स्वागत किया। श्वेनजांग के सम्मान में उन्होंने कन्नौज में एक महासभा का आयोजन किया जिसमें अनेक राजाओं एवं धार्मिक मतावलंबियों के प्रमुख सम्मिलित हुए। श्वेनजांग ने कन्नौज को एक सुंदर और वैभवशाली नगर के रूप में वर्णित किया और हर्ष को एक

न्यायप्रिय और ओजस्वी शासक बताया, जो एक विशाल सेना का संचालन करते थे और प्राय: सैन्य अभियानों में संलग्न रहते थे। हर पाँच वर्षों में वह प्रयाग (गंगा और यमुना नदियों के संगम पर वर्तमान प्रयागराज) में एक महासभा का आयोजन करते थे, जहाँ वह पवित्र अनुष्ठानों के पश्चात वृहद स्तर पर अपनी अपार संपत्ति का दान करते थे। दान बौद्धों, ब्राह्मणों एवं निर्धनजनों को अर्पित किया जाता था।

आइए विचार करें

क्या उपर्युक्त आयोजन आपको इस पाठ्यपुस्तक के भाग 1 में वर्णित किसी समान आयोजन का स्मरण कराता है?

हर्ष ने नर्मदा नदी के दक्षिण तक अपने साम्राज्य का विस्तार करने का प्रयत्न किया किंतु शक्तिशाली चालुक्य वंश के शासक **पुलकेशिन द्वितीय** ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। पुलकेशिन द्वितीय से हम शीघ्र ही परिचित होंगे। हर्ष उत्तरी भारत को एकीकृत करने का स्वप्न भी देखते थे, परंतु उन्हें इसमें केवल आंशिक सफलता ही प्राप्त हुई। यद्यपि, उन्होंने **कामरूप** (आधुनिक असम) के **वर्मन राजवंश** से मैत्री-संधि की जिसकी राजधानी प्राग्ज्योतिष (वर्तमान गुवाहाटी के निकट) थी। फिर भी पड़ोसी राज्यों के साथ हर्ष के संघर्ष चलते रहे।

चित्र 3.8 — नालंदा से प्राप्त एक टेराकोटा मुद्रा, यह हर्षवर्धन के सहयोगी वर्मन राजवंश के राजा भास्करवर्मन द्वारा जारी की गई थी। इसकी त्रिज्या लगभग 13 सेंटीमीटर है।

कन्नौज के लिए त्रिपक्षीय संघर्ष

647 सां.सं. में हर्ष की मृत्यु के पश्चात उत्तर भारत में व्यापक राजनैतिक अस्थिरता उत्पन्न हुई। कन्नौज एक लंबे और निर्णायक परिणाम से रहित 'त्रिपक्षीय संघर्ष' का केंद्र बन गया। इस संघर्ष में तीन प्रमुख शक्तियाँ सम्मिलित थीं— पूर्व से **पाल**, पश्चिम से **गुर्जर-प्रतिहार** और दक्कन से **राष्ट्रकूट** (चित्र 3.3 देखें)। 8वीं और 9वीं शताब्दियों के मध्य ये तीनों शक्तियाँ बार-बार एक-दूसरे से युद्ध करती रहीं और प्रत्येक युद्ध के परिणाम बदलते रहे। अंततः इन तीनों में से किसी को भी स्थायी विजय प्राप्त नहीं हुई।

त्रिपक्षीय
ऐसी परिस्थिति जिसमें तीन निश्चित पक्ष सम्मिलित हों।

आइए पता लगाएँ

इन शक्तिशाली राजवंशों के लिए कन्नौज आकर्षण का केंद्र क्यों था? मानचित्र (चित्र 3.3) में इसकी स्थिति का अवलोकन कीजिए और कक्षा में चर्चा कीजिए।

पाल वंश

हर्ष की मृत्यु के पश्चात बंगाल क्षेत्र में अव्यवस्था फैल गई। एक अभिलेख के अनुसार 750 सा.सं. में बंगाल की जनता ने 'गोपाल' को स्थिरता स्थापित करने के लिए राजा चुना। वे **पाल** वंश के प्रथम शासक बने और उन्होंने शीघ्र ही पूर्वी भारत के वृहद क्षेत्र पर शासन स्थापित कर लिया। उनके वंशज **धर्मपाल** ने पूर्वी और उत्तरी भारत के व्यापक क्षेत्रों तक पाल साम्राज्य का विस्तार किया। धर्मपाल को महायान बौद्ध धर्म का महान संरक्षक माना जाता है (इस पाठ्यपुस्तक के अध्याय 'भारत का पड़ोसी देशों से संबंध' में देखें)। उन्होंने विक्रमशिला (वर्तमान बिहार) और सोमपुर (वर्तमान बांग्लादेश) जैसे प्रमुख बौद्ध महाविहारों की स्थापना की। इनके साथ ही हर्ष की ही भाँति पाल शासकों ने नालंदा को भी संरक्षण प्रदान किया। वस्तुतः ये विशाल मठ उस काल के विश्वविद्यालय थे जहाँ भारत के ही नहीं, सुदूर क्षेत्रों से भी विद्यार्थी अध्ययन के लिए आते थे।

पाल साम्राज्य की समृद्धि का आधार केवल आंतरिक व्यापार ही नहीं था अपितु पूर्वी तट के बंदरगाहों के माध्यम से होने वाला सक्रिय समुद्री व्यापार भी था जो दक्षिण-पूर्व एशिया तक संपर्क का मार्ग प्रदान करता था। यद्यपि कालांतर में इस साम्राज्य का पतन हुआ, फिर भी इसने पूर्वी और उत्तरी भारत में सुदृढ़ शासन और विद्या की एक स्थायी एवं सतत परंपरा स्थापित की।

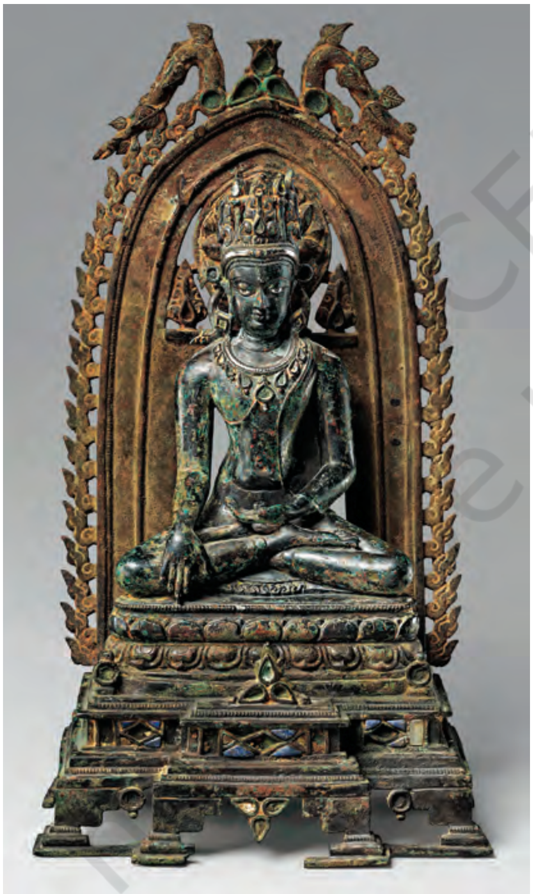

चित्र 3.9 — बिहार से प्राप्त पाल साम्राज्य के समय 10वीं–11वीं शताब्दी में निर्मित मुकुटधारी बुद्ध प्रतिमा

आइए विचार करें

कुछ इतिहासकार मानते हैं कि धर्मपाल स्वयं बौद्ध थे; निश्चित रूप से उन्होंने बौद्ध शिक्षाओं और बौद्ध शिक्षण संस्थानों को संरक्षण प्रदान किया। किंतु हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि प्राचीन भारत में धर्म की अवधारणा वर्तमान की तुलना में अधिक लचीली थी। भिक्षु और भिक्षुणियों को छोड़कर सामान्य जन एक-साथ अनेक आस्था-प्रणालियों से संबंधित रह सकते थे और विभिन्न प्रकार की उपासना पद्धतियों का पालन करते थे। वस्तुतः सामान्य जन के लिए हिंदू, बौद्ध मत और जैन मत की उपासना पद्धतियाँ भिन्न-भिन्न नहीं थीं, अपितु ये सब एक ही आध्यात्मिक दार्शनिक परंपरा की शाखाएँ थीं। वहाँ के शासक भी अनेक विचारधाराओं को संरक्षण देने में गौरवान्वित होते थे। इसके उदाहरण हमें इस पाठ्यपुस्तक के भाग 1 में वर्णित गुप्त शासकों के शासन में प्राप्त होते हैं और हर्ष की वैचारिक उदारता भी इस समन्वित भावना के संरक्षण का एक उदाहरण है। इसी प्रकार धर्मपाल के अनेक वंशज बौद्ध संस्थानों को संरक्षण देते हुए भी शिवभक्त माने जाते थे। राष्ट्रकूट वंश के शासक (पृष्ठ 71) तथा कुछ अन्य शासक ऐसा संरक्षण देने वाले अन्य उदाहरण हैं।

विद्वान 'द्वारपंडितों' का विश्वविद्यालय

धर्मपाल ने आठवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में गंगा नदी के तट पर विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना की। चार शताब्दियों से अधिक समय तक यह विश्वविद्यालय शिक्षा का एक महान केंद्र बना रहा। इस विश्वविद्यालय में छह महाविद्यालय, मठ, मंदिर, व्याख्यान सभागार एवं एक विशाल पुस्तकालय था। लगभग 3,000 मेधावी विद्यार्थी यहाँ व्याकरण, तर्कशास्त्र, हिंदू और बौद्ध दर्शन, विधि और अनुष्ठान जैसे विषयों का अध्ययन करते थे। यहाँ प्रवेश अत्यंत चयनात्मक था। प्रत्येक महाविद्यालय में एक 'द्वारपंडित' के द्वारा प्रवेश से पूर्व विद्यार्थियों की परीक्षा ली जाती थी। विक्रमशिला विशेष रूप से तिब्बत से अपने संबंधों के लिए प्रसिद्ध था। इस विश्वविद्यालय के एक प्रसिद्ध आचार्य तिब्बत गए जहाँ उन्होंने संस्कृत ग्रंथों का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया और तिब्बत के बौद्धमत (वज्रयान बौद्धमत के नाम से विख्यात, इस पाठ्यपुस्तक के अध्याय 'भारत का पड़ोसी देशों से संबंध' में देखें) को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

संपूर्ण भारत में विद्यमान ऐसे असंख्य महत्त्वपूर्ण शिक्षण केंद्रों ने भारत की चिरकालीन ज्ञान-परंपरा को जीवंत और समृद्ध बनाए रखा।

आगामी अध्याय में हम देखेंगे कि 12वीं शताब्दी में बख्तियार खिलजी ने विक्रमशिला को लूटा और नष्ट कर दिया।

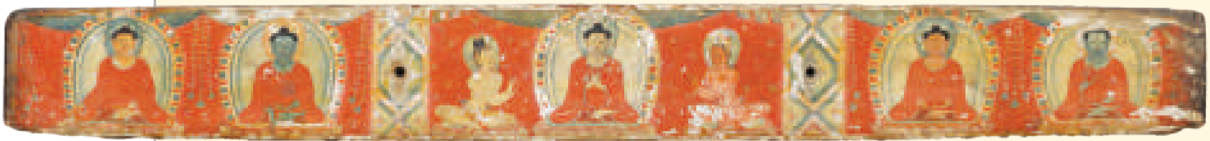

चित्र 3.10 — बुद्ध के पाँच रूपों से चित्रित विक्रमशिला की एक पांडुलिपि का आवरण

गुर्जर-प्रतिहार वंश

इस वंश की स्थापना 8वीं शताब्दी के मध्य में नागभट्ट प्रथम ने की। संभवतः इस वंश का उद्‌गम पश्चिमी भारत में हुआ, जहाँ 'गुर्जर' शब्द गुजरात और राजस्थान के मध्य के क्षेत्र के लिए प्रयुक्त होता था। जैसा कि इस अध्याय में हम आगे देखेंगे कि इस राजवंश को उत्तर-पश्चिम भारत में हुए अरब आक्रमणों को पीछे धकेलने में विशेष सफलता प्राप्त हुई। इनकी प्रारंभिक राजधानी भील्लमाल (आधुनिक भीनमाल, पश्चिमी राजस्थान) थी; संभवतः कालांतर में इनकी राजधानी उज्जयिनी स्थानांतरित हो गई।

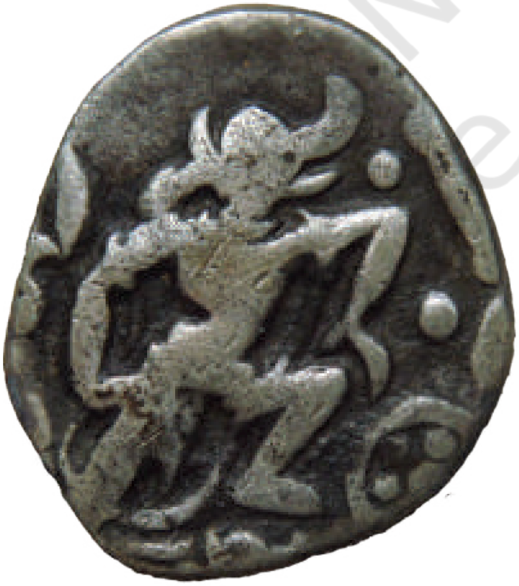

चित्र 3.11 — विष्णु के वराह अवतार को दर्शाती गुर्जर-प्रतिहार काल की एक रजत मुद्रा (लगभग 2 सेंटीमीटर व्यास)

9वीं शताब्दी में, प्रख्यात **प्रतिहार** शासक राजा **भोज**, जो विष्णुभक्त थे, ने पश्चिम में पंजाब और काठियावाड़ (या सौराष्ट्र) से लेकर पूर्व में कन्नौज तक विस्तृत तथा उत्तर भारत के अधिकांश भाग को नियंत्रण करते हुए एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। भोज को 'मिहिर' (सूर्य का एक नाम) तथा 'आदि वराह' (वराह विष्णु के एक अवतार हैं, देखें चित्र 3.11) और अन्य उपाधियों से भी जाना जाता था।

तथापि, एक शताब्दी उपरांत, गुर्जर-प्रतिहारों को राष्ट्रकूट शासकों के हाथों कन्नौज का विनाश झेलना पड़ा, जिसने उनके साम्राज्य का विघटन तीव्र कर दिया। अंततः 11वीं सदी के आरंभ में गज़नवियों ने उसका उन्मूलन कर दिया, जिनके विषय में हम अगले अध्याय में जानेंगे।

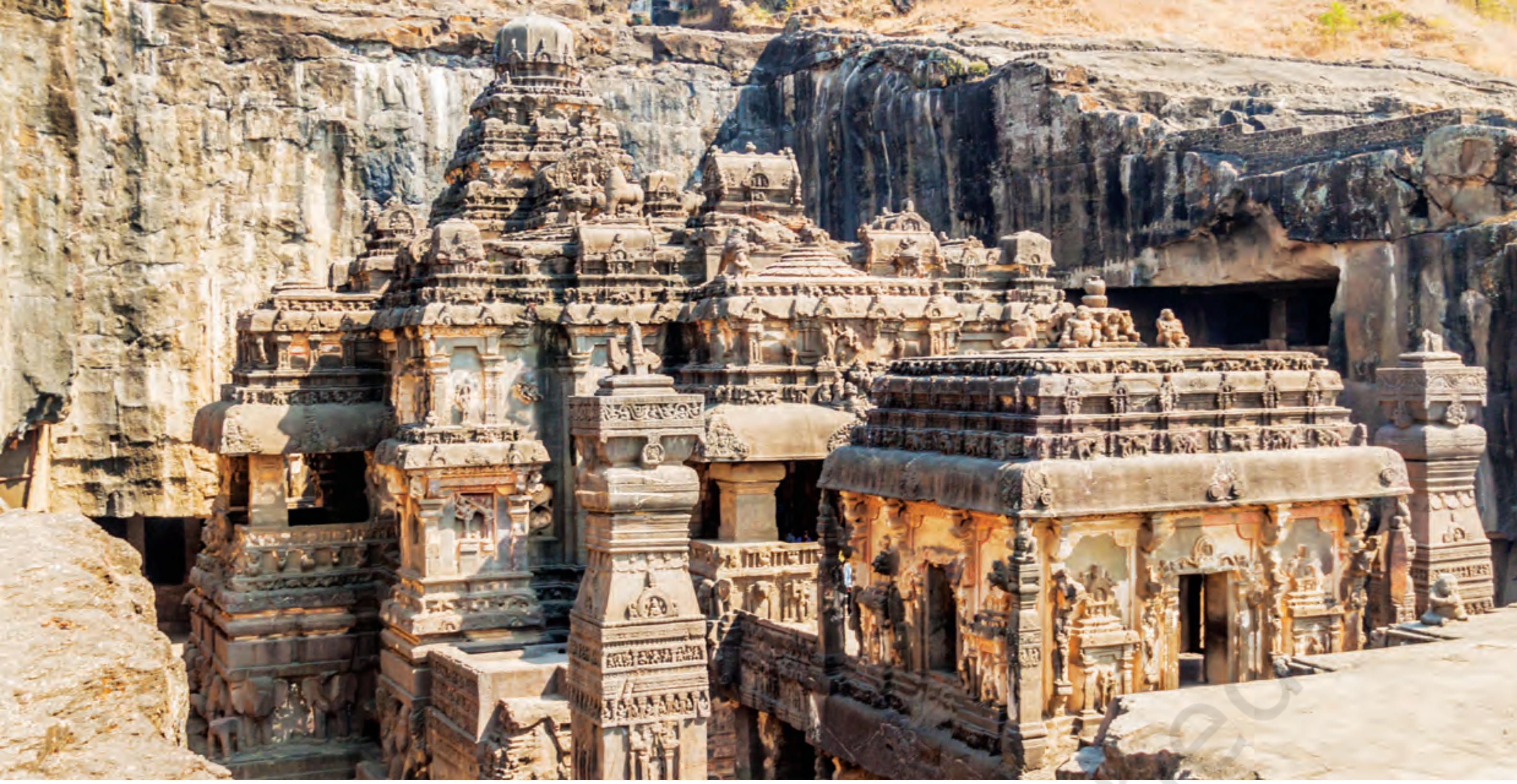

चित्र 3.12 — एलोरा में पहाड़ी को काटकर उत्कीर्णित कैलाशनाथ मंदिर का दृश्य। यह सामान्यतः कैलाश मंदिर के नाम से भी प्रसिद्ध है; यह मंदिर केवल भवन निर्माण नहीं अपितु एक विराट शैल-शिल्प का उदाहरण है।

राष्ट्रकूट

8वीं शताब्दी के मध्य में **दंतिदुर्ग** ने दक्कन क्षेत्र में चालुक्यों को पराजित कर प्रथम स्वतंत्र **राष्ट्रकूट** शासक के रूप में अपनी सत्ता स्थापित की (इस अध्याय में आगे हम चालुक्यों के विषय में भी चर्चा करेंगे)। राष्ट्रकूटों ने अपने शक्ति-केंद्र को वर्तमान कर्नाटक क्षेत्र में स्थानांतरित किया और 'मान्यखेत' (वर्तमान मालखेड़ा) को अपनी राजधानी बनाया। लगभग दो शताब्दियों तक भारतीय उपमहाद्वीप के अधिकतर भाग पर अपने साम्राज्य के कारण वे सर्वाधिक प्रभावशाली राजनैतिक शक्तियों में से एक रहे। दंतिदुर्ग के उत्तराधिकारियों ने उत्तर भारत में भी सफल सैन्य अभियानों का संचालन किया और कुछ समय के लिए कन्नौज पर अधिकार स्थापित किया।

यह कल्पना करना उचित नहीं होगा कि इस प्रकार के राजवंशों के शासक निरंतर युद्धरत रहते थे। वास्तव में उनके पास ऐसे सृजनात्मक कार्यों के लिए भी समय और संसाधन उपलब्ध थे, जिन्हें देख कर वर्तमान में हम आश्चर्यचकित होते हैं। राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण प्रथम ने 'एलोरा' (वर्तमान महाराष्ट्र) में एक पर्वतीय शिला को काटकर कैलाशनाथ मंदिर का निर्माण करवाया। यह मंदिर भारत का विशालतम शैलकृत मंदिर है (चित्र 3.12)। राष्ट्रकूट शासकों ने हिंदू, बौद्ध तथा जैन सभी दर्शनों को समान रूप से संरक्षण प्रदान किया तथा संस्कृत, प्राकृत और कन्नड़ भाषाओं में शिक्षा और साहित्य के विकास को प्रोत्साहित किया।

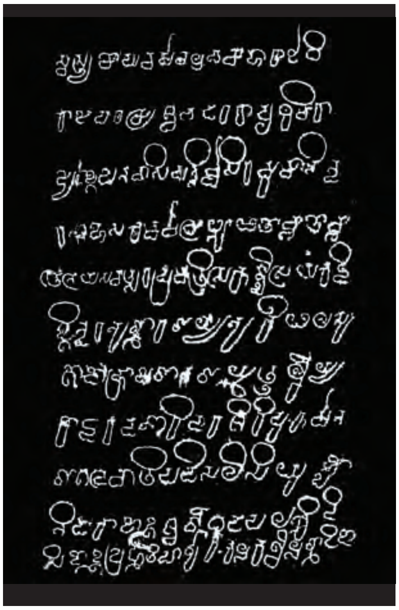

9वीं शताब्दी में राष्ट्रकूट वंश के एक अन्य शासक **अमोघवर्ष प्रथम** ने 'नृपतुंग' उपाधि धारण की जिसका अर्थ है— 'राजाओं में श्रेष्ठ'। पड़ोसी राज्यों से, जिनमें ऊपर विवेचित राजवंश भी सम्मिलित थे, बार-बार संघर्ष होने के बाद भी उन्होंने अपने साम्राज्य में शांति, समृद्धि और राजनैतिक स्थिरता बनाए रखी। यह स्थिरता उनके 64 वर्षों के दीर्घकालीन शासन से भी स्पष्ट होती है। अमोघवर्ष नृपतुंग को कभी-कभी 'जैन राजा' भी कहा जाता है क्योंकि वे जैन धर्म से विशेष रूप से संबंधित थे! उन्होंने हिंदू मंदिरों को भी संरक्षण प्रदान किया। वे एक उत्कृष्ट कवि थे और उन्होंने संस्कृत तथा कन्नड़ भाषाओं में साहित्यिक रचनाएँ कीं।

चित्र 3.13 — कर्नाटक के एक ग्राम-मंदिर में राष्ट्रकूट सम्राट अमोघवर्ष नृपतुंग का अभिलेख। यह प्राचीन कन्नड़ लिपि में लिखित है।

इसे अनदेखा न करें

केंद्रीय बेंगलुरु में स्थित 'नृपतुंग मार्ग' का नाम अमोघवर्ष प्रथम के नाम पर रखा गया है। यहाँ अनेक सरकारी भवन और संस्थान स्थित हैं।

आइए विचार करें

10वीं शताब्दी के बगदाद निवासी अरब इतिहासकार और यात्री अल-मसूदी ने एक राष्ट्रकूट शासक की प्रशंसा की। उनके अनुसार, "उस शासक की सेना और हाथियों की संख्या अपार थी। ...सिंध और हिंद के अन्य शासकों की तुलना में वह राजा अपने राज्य में मुसलमानों का विशेष सम्मान करता था। उसके राज्य में इस्लाम को मान्यता और संरक्षण प्राप्त था तथा उनके पाँच समय की नमाज करने के लिए मस्जिदों और जामा मस्जिदों का निर्माण कराया गया था, जो सदैव भरी होती थीं।"

इससे हमें राष्ट्रकूटों के विषय में क्या पता चलता है?

जब पाल, गुर्जर-प्रतिहार और राष्ट्रकूट— ये तीनों शक्तिशाली राजवंश कन्नौज अर्थात मध्य भारत और गंगा के मैदानों पर प्रभुत्व के लिए संघर्षरत थे, उसी समय भारत के अन्य क्षेत्रों में भी अनेक शक्तियों का उत्थान एवं पतन हो रहा था। उन सभी का विस्तार से अध्ययन करना संभव नहीं है; अतः यहाँ हम संक्षेप में कुछ प्रमुख उदाहरणों पर दृष्टि डालेंगे।

कश्मीर

सुदूर उत्तर में 8वीं शताब्दी के मध्य में हिमालयी राज्य कश्मीर में एक नई राजनैतिक शक्ति का प्रादुर्भाव हो रहा था। अभिलेखों और मुद्राओं के अतिरिक्त कश्मीर के क्रमागत शासकों के विषय में हमें मुख्यतः कल्हण से जानकारी प्राप्त होती है। कल्हण ने *राजतरंगिणी* नामक ग्रंथ की रचना की, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'राजाओं की नदी' (नीचे दिए गए बॉक्स को देखें)। कल्हण द्वारा वर्णित अनेक राजाओं और कुछ रानियों में से **कार्कोट** वंश के ललितादित्य मुक्तापीड को एक सुदृढ़ और प्रभावशाली शासक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। किंतु उनके पश्चात कश्मीर की राजनैतिक स्थिति में अनेक आंतरिक संघर्ष और सत्ता-परिवर्तन हुए, जिनमें कुछ शासकों द्वारा बलपूर्वक सिंहासन पर अधिकार करने की घटनाएँ भी सम्मिलित थीं। उदाहरण के लिए, 10वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में रानी दिद्दा ने रणनैतिक गठबंधनों के माध्यम से अपनी सत्ता को सुदृढ़ किया; परंतु कल्हण के अनुसार उन्होंने अपने प्रतिद्वंद्वियों का, यहाँ तक कि अपने ही पौत्रों का भी, निर्दयतापूर्वक उन्मूलन कर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। रानी दिद्दा ने कई नगरों की स्थापना की, अनेक मंदिरों का निर्माण कराया तथा अनेक प्राचीन मंदिरों का पुनरुद्धार भी किया।

इसे अनदेखा न करें

कश्मीरी विद्वान एवं कवि कल्हण ने 12वीं शताब्दी में संस्कृत भाषा में महाकाव्य *राजतरंगिणी* की रचना की। इस ग्रंथ में उन्होंने कश्मीर के राजवंशों के इतिहास को उनके प्रारंभिक काल से लेकर अपने समय तक क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया है।

कल्हण ने इतिहास-लेखन के प्रति अपने दृष्टिकोण को इन शब्दों में स्पष्ट किया है—

> "मेरा प्रयत्न यह है कि जहाँ अतीत की घटनाओं के वर्णन अनेक दृष्टियों से खंडित हो गए हैं, वहाँ उन्हें एक सुसंबद्ध विवरण के रूप में प्रस्तुत किया जाए... मैंने पूर्ववर्ती विद्वानों द्वारा रचित ग्यारह ग्रंथों का अध्ययन किया है, जिनमें राजाओं के इतिहास का वर्णन मिलता है... तथा मंदिरों में प्राण-प्रतिष्ठाओं, राजकीय अनुदानों, प्रशस्ति-लेखों और अन्य लिखित स्रोतों से संबंधित अभिलेखों का अध्ययन कर त्रुटियों से उत्पन्न अनेक कठिनाइयों का समाधान किया है।"

इन सभी वर्णनों के माध्यम से कल्हण का उद्देश्य केवल अपनी दृष्टि से इतिहास-लेखन ही नहीं था, अपितु शासकों के नैतिक मूल्यों या उनके अभाव को भी रेखांकित करना था, ताकि इतिहास से नैतिक शिक्षाएँ ग्रहण की जा सकें। वे लिखते हैं— "जो शासक अपनी प्रजा को पीड़ित करते हैं, वे सपरिवार नष्ट हो जाते हैं; इसके

विपरीत, जहाँ अराजकता हो, वहाँ व्यवस्था की पुनर्स्थापना करने वालों के वंशजों पर भी सौभाग्य की कृपा होती है।”

आइए पता लगाएँ

निम्नलिखित प्रश्नों पर कक्षा में समूह बनाकर चर्चा कीजिए और तत्पश्चात विभिन्न समूहों के उत्तरों की तुलना कीजिए—

- → कल्हण के अनुसार एक इतिहासकार में कौन-कौन से गुण होने चाहिए?
- → ये पंक्तियाँ इतिहास की सूचना-संग्रह की उनकी पद्धति के विषय में क्या संकेत देती हैं? यह पद्धति वर्तमान काल में किए जाने वाले इतिहास-लेखन पद्धतियों से किस प्रकार समान या भिन्न है?
- → कल्हण यह भी लिखते हैं— “वही उदात्त मन वाला कवि प्रशंसा के योग्य है जिसकी वाणी न्यायाधीश की भाँति हो, जो भूतकाल की घटनाओं का वर्णन करते समय न प्रेम से प्रभावित होती है और न द्वेष से।” यहाँ ‘प्रेम या द्वेष से मुक्त’ होने का क्या अभिप्राय है? इस अपेक्षा की पूर्ति करने से एक इतिहासकार किस प्रकार अधिक विश्वसनीय सिद्ध होता है?

आइए पता लगाएँ

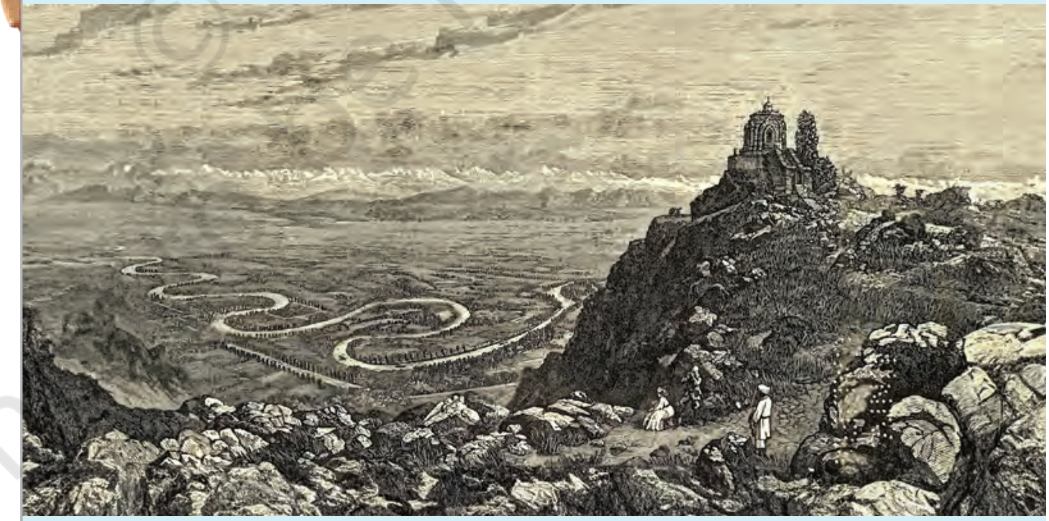

चित्र 3.14 — 19वीं सदी का शंकराचार्य पहाड़ी का एक चित्र (इसे तख़्त-ए-सुलेमान के नाम से और प्राचीन समय में गोपाद्री पहाड़ी के नाम से जाना जाता रहा है) जो श्रीनगर के निकट कश्मीर घाटी के ऊपर स्थित है। पृष्ठभूमि में हिमालय पर्वतमाला और नीचे घुमावदार झेलम नदी है।

→ परंपरा के अनुसार 8वीं शताब्दी के महान आचार्य एवं अद्वैत वेदांत दर्शन के प्रणेता 'आदि शंकराचार्य' ने इस चित्र में दर्शाए गए पर्वत का भ्रमण किया था। पर्वत-शिखर पर स्थित पाषाण मंदिर को शंकराचार्य मंदिर अथवा ज्येष्ठेश्वर मंदिर के नाम से जाना जाता है।

→ शंकराचार्य ने प्रतिपादित किया कि 'ब्रह्म' ही परम तत्व अथवा विशुद्ध चेतन है और हमारे द्वारा समझा जाने वाला संसार 'माया' अथवा भ्रम है। उन्होंने बदरीनाथ, पुरी, द्वारका और श्रृंगेरी में चार मठों (शिक्षा केंद्रों) की स्थापना की। मानचित्र में इन नगरों का स्थान चिह्नित कीजिए; आपके विचार में उन्होंने भारत के मध्यवर्ती क्षेत्र के स्थान पर देश के चार भिन्न-भिन्न कोनों को ही क्यों चुना होगा?

कश्मीर की पर्वतीय भौगोलिक संरचना के उपरांत भी इतिहास के विभिन्न कालखंडों में यह राज्य भारत के अन्य क्षेत्रों में हो रहे राजनैतिक एवं सांस्कृतिक घटनाक्रम से निरंतर जुड़ा रहा। जिस काल की हम बात कर रहे हैं, उस समय कश्मीर संस्कृत अध्ययन, दर्शन एवं कलाओं का प्रमुख केंद्र था। कश्मीर शैवमत नामक विचारधारा ने कई विद्वानों जैसे **अभिनवगुप्त** को जन्म दिया जिनके दर्शनशास्त्र, काव्य, कला एवं सौंदर्यशास्त्र की रचनाओं का समस्त भारत में बहुत प्रभाव पड़ा। कश्मीर बौद्ध विद्या का भी एक महत्त्वपूर्ण सेतु था। यहाँ से विद्वान, भिक्षु एवं ग्रंथ उत्तर भारत के अन्य भागों में, तिब्बत और मध्य एशिया में जाते रहे। कश्मीरी शिल्पकारों, मूर्तिकारों एवं पांडुलिपि-चित्रकारों की माँग उत्तर भारत में ही नहीं अपितु अन्य स्थानों में भी थी। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र के बौद्धिक एवं कलात्मक विनिमय ने कश्मीर को पूरे उपमहाद्वीप के सांस्कृतिक जीवन से घनिष्ठ रूप से संबंद्ध कर दिया था।

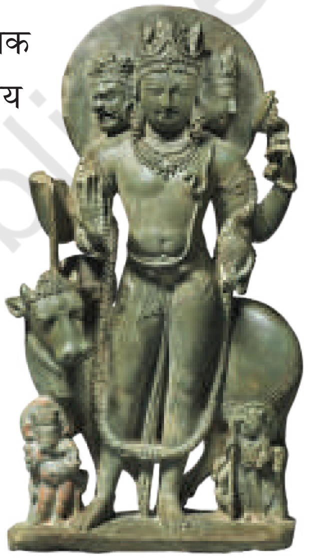

चित्र 3.15 — खड़े हुए शिव की प्रतिमा, कश्मीर, 8वीं शताब्दी

दक्कन और उसके बाद

हम इस पाठ्यपुस्तक में कुछ अन्य अध्यायों में दक्कनी पठार की चर्चा कर चुके हैं। उपमहाद्वीप के सुदूर दक्षिण सिरे के साथ ही यह क्षेत्र इस काल में उतना ही सक्रिय एवं गतिशील रहा और हम राष्ट्रकूटों के विषय में पहले ही अध्ययन कर चुके हैं। क्या आपको वाकाटक रानी प्रभावती गुप्त (इस पाठ्यपुस्तक के भाग 1 के अध्याय 7) का स्मरण है? उस राजवंश के अंत होते ही अनेक शक्तिशाली राज्यों में वर्चस्व के लिए संघर्ष छिड़ गया (चित्र 3.16)।

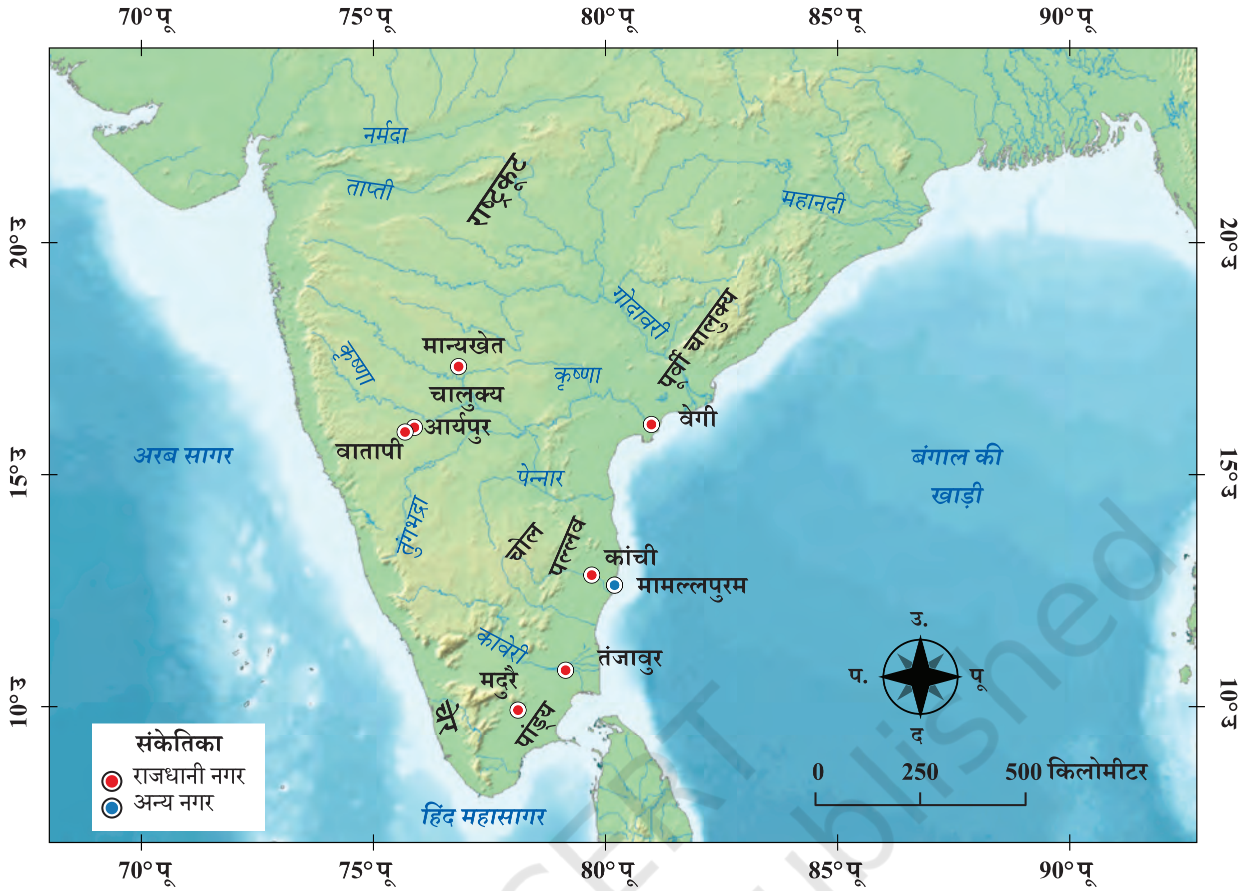
70° पू
75° पू
80° पू
85° पू
90° पू
20° उ
15° उ
10° उ
नर्मदा
ताप्ती
राष्ट्रकूट
महानदी
गोदावरी
पूर्वी चालुक्य
मान्यखेत
कृष्णा
कृष्णा
चालुक्य
आर्यपुर
वातापी
वेंगी
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
पेन्नार
तुंगभद्रा
चोल
पल्लव
कांची
मामल्लपुरम
कावेरी
तंजावुर
मदुरै
चेर
पाण्ड्य
उ.
प.
पू
द
0
250
500 किलोमीटर
संकेतिका
● राजधानी नगर
● अन्य नगर
हिंद महासागर

चित्र 3.16 — इस काल में दक्कन एवं दक्षिण भारत के प्रमुख राज्यों को दर्शाता हुआ एक सरलीकृत मानचित्र

चालुक्य

छठी शताब्दी के मध्य में पुलकेशिन प्रथम ने **चालुक्य** राजवंश की स्थापना की। इस अध्याय के आरंभ में हम उनके पौत्र पुलकेशिन द्वितीय से मिल चुके हैं, जिन्होंने न केवल हर्ष की दक्षिण की ओर की विस्तार-नीति को रोक दिया, साथ ही चालुक्य राज्य का वृहद विस्तार किया। उनकी राजधानी वातापी थी— वर्तमान कर्नाटक का बादामी, जो भव्य हिंदू एवं जैन गुहा-मंदिरों के समूह के लिए विख्यात है।

कुछ दूर पर स्थित चालुक्यों की पूर्व राजधानी आर्यपुर (बाद में 'अय्यवोले' नाम से तथा वर्तमान में ऐहोल के नाम से जानी जाती है) में सौ से अधिक हिंदू, बौद्ध एवं जैन मंदिर हैं। इनमें एक मेगुति पर्वत पर स्थित 7वीं शताब्दी का जैन मंदिर है, जिसकी पूर्वी दीवार पर चालुक्यों, विशेषकर राजा **पुलकेशिन द्वितीय** की प्रशंसा में एक लंबा संस्कृत अभिलेख है (चित्र 3.17)। इसके रचयिता राजकवि रविकीर्ति ने काव्यात्मक शैली में पुलकेशिन द्वितीय की हर्ष तथा अन्य प्रतिद्वंद्वी राज्यों पर विजयों का अभिलेख किया है। किंतु यह अभिलेख अतिशयोक्ति से पूर्णत: मुक्त नहीं है, क्योंकि इसमें वर्णित कुछ 'तथ्यों' का

अन्य अभिलेखों द्वारा खंडन किया गया है। तथापि यह ध्यान रखने योग्य है कि श्वेनजांग ने दक्षिण की ओर यात्रा के मार्ग में चालुक्य राज्य का भ्रमण किया और लिखा है कि पुलकेशिन द्वितीय के "परोपकारी कार्यों का दूर-दूर तक प्रभाव है और उनकी प्रजा पूर्ण आज्ञाकारिता के साथ उनकी आज्ञा का पालन करती है।"

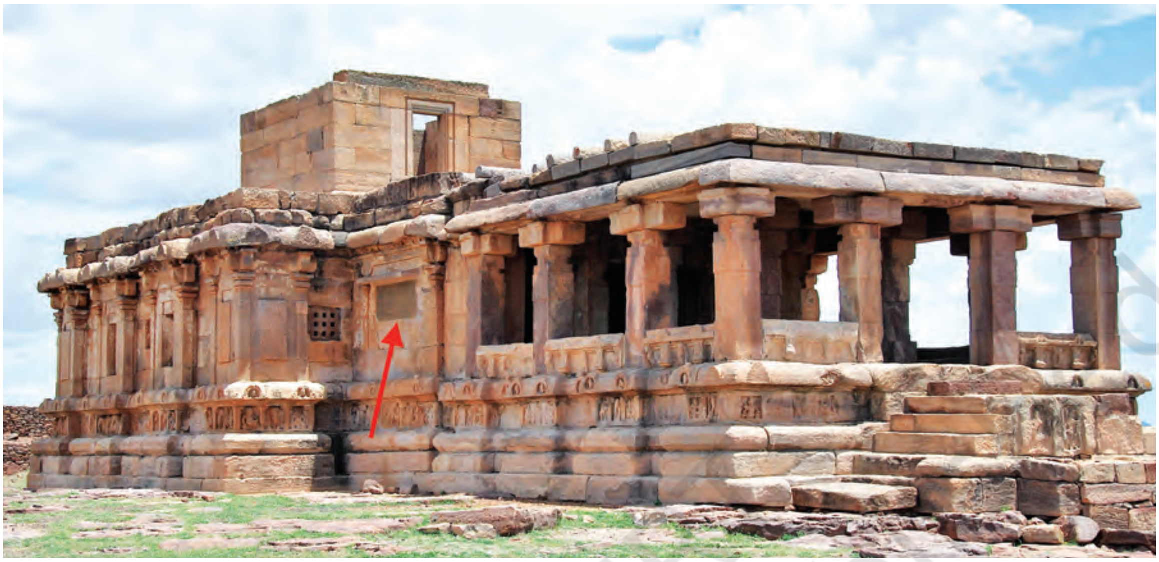

चित्र 3.17 — ऐहोल स्थित मेगुति मंदिर (आंशिक जीर्णोद्धार), लाल तीर चालुक्यों की प्रशंसा में लिखे गए एक लंबे अभिलेख वाले पाषाण पट को इंगित करता है।

तथापि इसमें कोई संदेह नहीं है कि 7वीं शताब्दी के आरंभ में भारत के अधिकांश भाग पर दो महान राजसी शक्तियों का वर्चस्व था— विंध्य के उत्तर में हर्षवर्धन और उसके दक्षिण में पुलकेशिन द्वितीय का। अंततः पुलकेशिन द्वितीय को कांची के पल्लवों के हाथों पराजय का सामना करना पड़ा। जैसा कि हमने पहले देखा कि 8वीं शताब्दी के मध्य तक राष्ट्रकूट दक्कन के चालुक्यों का स्थान ले चुके थे। 10वीं शताब्दी उपरांत इस राजवंश का पश्चिम में पुन:उदय हुआ, जिन्हें कल्याणी के **पश्चिमी चालुक्यों** के नाम से जाना जाता है। उनकी नई राजधानी कल्याणी उत्तर कर्नाटक में आधुनिक बसवकल्याण थी। इनसे हम अगले अध्याय में मिलेंगे।

जब बादामी के चालुक्य साम्राज्य का अस्त हुआ, तब उसकी पूर्वी शाखा ने स्वतंत्रता की घोषणा की और पूर्वी दक्कन में अपने प्रभाव का प्रसार किया। उन्हें **पूर्वी चालुक्य** कहा जाता है, जिन्होंने वर्तमान आंध्र प्रदेश के वेंगी से शासन किया (अगले अध्याय में चित्र 4.10 देखें)। उनका राष्ट्रकूटों से प्राय: संघर्ष हुआ जिसमें इन्हें विजय और पराजय दोनों मिली तथा कभी-कभी गठबंधन भी हुए। पूर्वी चालुक्यों ने अनेक हिंदू और जैन संप्रदायों एवं बौद्ध केंद्रों को भी संरक्षण प्रदान किया। उनके शासन में तेलुगु और कन्नड़ साहित्य का विशेष उत्कर्ष हुआ।

पल्लव राजवंश

कक्षा 7 भाग 1 की पाठ्यपुस्तक में हमने **पल्लवों** के उदय का अध्ययन किया था। कांची (या कांचीपुर; वर्तमान तमिलनाडु का कांचीपुरम, चित्र 3.16) राजधानी वाली इस वंश-परंपरा ने सातवीं शताब्दी में महेंद्रवर्मन प्रथम और उनके पुत्र **नरसिंहवर्मन प्रथम** के शासनकाल में अपनी चरम उत्कर्षावस्था प्राप्त की। नरसिंहवर्मन प्रथम 'मामल्ल' (अर्थात मल्लयोद्धा) के नाम से भी प्रसिद्ध थे। वास्तव में उनके ही नेतृत्व में पुलकेशिन द्वितीय पर विजय प्राप्त की गई और बादामी पर अधिकार किया गया। तथापि, इसके उपरांत उन्होंने तुंगभद्रा नदी को दोनों शक्तियों के मध्य एक अलिखित सीमा मानते हुए पीछे हटना उचित समझा। उन्होंने सिंहली राजकुमार को उसका खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त कराने के उद्देश्य से श्रीलंका की ओर अपना एक नौसैनिक अभियान भी भेजा।

कांचीपुरम केवल एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक केंद्र ही नहीं अपितु एक आर्थिक केंद्र भी था, जहाँ मसालों, वस्त्र (रेशम सहित), हाथीदाँत और अन्य भव्य वस्तुओं का व्यापार होता था। पल्लवों ने अपने बंदरगाहों के माध्यम से न केवल श्रीलंका से, अपितु अधिकांश दक्षिण-पूर्व एशिया से व्यापारिक संबंध बनाए। इनमें विशेष रूप से मामल्लपुरम (जिसे महाबलीपुरम भी कहा जाता है, चित्र 3.16 में) में उत्खनन के दौरान प्राचीन चीनी, फारसी एवं रोमन मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं।

हम श्वेनजांग से पुन: कांची में मिलते हैं जहाँ वह 10,000 भिक्षुओं (संभवत: यह संख्या अतिशयोक्तिपूर्ण है) वाले 100 बौद्ध मठों की चर्चा करते हैं और साथ ही 80 हिंदू मंदिरों और अनेक जैनों की उपस्थिति के विषय में भी लिखते हैं। उनके अनुसार "यहाँ के लोग सत्यता के सिद्धांतों से गहनता से जुड़े हैं और ज्ञानार्जन को बहुत महत्त्व देते हैं।"

एकाष्म
एक ही पत्थर अथवा शिला से निर्मित।

पल्लवों ने अनेक मंदिर एवं अन्य स्थापत्य संरचनाएँ निर्मित कराईं (चित्र 3.1)। मामल्लपुरम में एक विशिष्ट शैली में विस्तृत शैलकृत कंदराएँ और एकाष्म मंदिरों को तराशा गया, जिनमें देवताओं की प्रतिमाएँ हैं (चित्र 3.18) तथा महाभारत से संबंधित वृत्तांतों का चित्रांकन भी है। पल्लव जैन, वैष्णव एवं शैव मतों के संरक्षक थे। उन्होंने संस्कृत और तमिल दोनों भाषाओं में साहित्य को प्रश्रय और दंडी जैसे महान कवियों को संरक्षण प्रदान किया, जिन्होंने संस्कृत काव्यों की रचना की। महेंद्रवर्मन स्वयं एक उत्कृष्ट कवि थे, जिन्होंने एक व्यंग्यात्मक संस्कृत नाटक की रचना की।

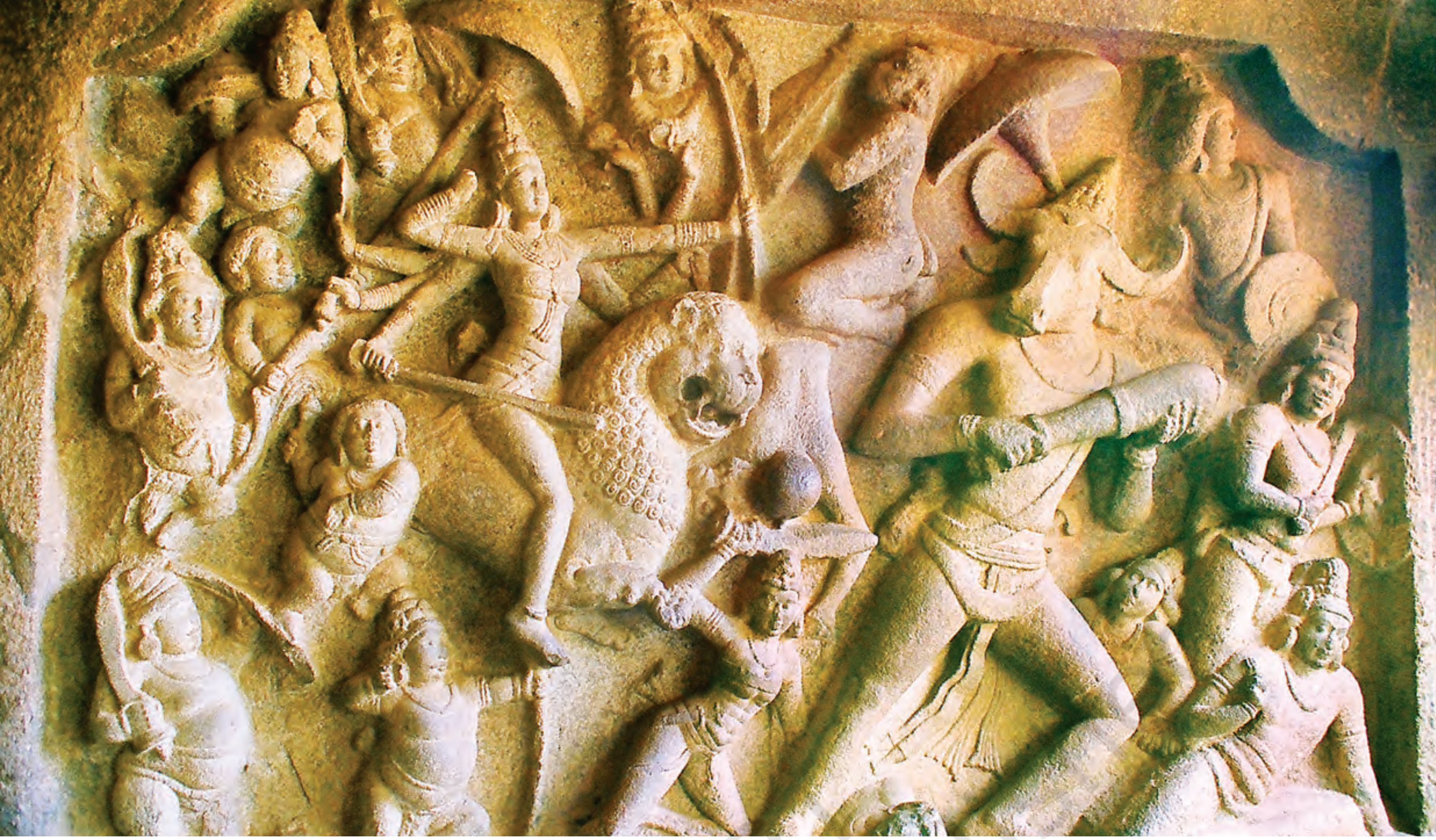

चित्र 3.18 — मामल्लपुरम में ग्रेनाइट पत्थर पर उकेरा गया शैलचित्र, जिसमें देवी दुर्गा को दैत्य महिषासुर का वध करते हुए दर्शाया गया है।

आइए पता लगाएँ

इस शिलाफलक (चित्र 3.18) की त्रि-आयामी संरचना पर ध्यान दें, जिसमें दैत्य पर देवी दुर्गा का आत्मविश्वासपूर्ण आक्रमण अभिव्यक्त किया गया है।

- → क्या आप देवी दुर्गा के विविध आयुधों में से कुछ को पहचान सकते हैं? तथा क्या उनके वाहन को भी पहचान सकते हैं?
- → उनके अनुचरों और दैत्य के अनुचरों में क्या मुख्य अंतर हैं?
- → दैत्य की तिरछी मुद्रा और समग्र भाव-भंगिमा से क्या संकेत प्राप्त होता है?

9वीं शताब्दी के अंत तक पल्लवों ने उत्तरी तमिलनाडु और दक्षिणी आंध्र प्रदेश के बड़े भाग पर शासन किया और उन्हें अंततः चोल राजा **आदित्य प्रथम** द्वारा परास्त किया गया।

चित्र 3.19 — युद्धरत योद्धाओं को दर्शाता हुआ एक शिलाफलक (ऐरावतेश्वर मंदिर, तमिलनाडु)

सुदूर दक्षिण में

हमारे काल से लगभग एक सहस्त्राब्दी पूर्व पांड्य, चोल एवं चेर राज्यों का वर्णन अशोक के एक अभिलेख में उसके दक्षिणी पड़ोसियों के रूप में किया गया है। उनका संगम साहित्य (तमिल काव्य का प्राचीनतम संग्रह) में भी वर्णन है और हमने इस पाठ्यपुस्तक के भाग 1 (देखें 'पुर्नगठन का काल' विशेषत: चित्र 6.14) में उनका सर्वप्रथम उल्लेख किया है। कालांतर में वे लुप्त हो गए और दूसरी शक्तियों से दब गए। अब उनका पुनरुत्थान (चित्र 3.16) होता है जिसका दक्षिण के राजनैतिक और सांस्कृतिक जीवन पर प्रभाव पड़ा और वे प्राय: परस्पर युद्धरत रहे।

छठीं शताब्दी के आस-पास **पांड्यों** का उदय हुआ। चालुक्यों और पल्लवों के साथ गठबंधन करते हुए उनका दक्षिणी तमिलनाडु के अधिकांश भाग और कुछ समय श्रीलंका के उत्तरी भाग पर शासन रहा। उनकी मुद्राओं और अभिलेखों से 'कोरकई' जैसे बंदरगाहों के द्वारा दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ समुद्री व्यापार के प्रमाण मिलते हैं। उनकी राजधानी मदुरै थी, जो एक जीवंत सांस्कृतिक केंद्र था। उन्होंने अनेक मंदिरों, शैलकृत मंदिरों का निर्माण कराया और कवियों को संरक्षण प्रदान किया। एक ताम्रपत्र के अनुसार उन्होंने महाभारत का तमिल में अनुवाद (दुर्भाग्यवश वर्तमान में अनुपलब्ध) कराया।

10वीं शताब्दी के शक्तिशाली चोलों ने उन्हें परास्त किया, किंतु तीन शताब्दियों के उपरांत वे पुनः उत्कर्ष को प्राप्त हुए।

इसी काल में केरलम तट पर **चेर**, जिन्हें चेर पेरुमल भी कहा जाता था, ने अपने पड़ोसी राज्यों के सैन्य शक्ति से संपन्न होते हुए भी अपनी स्वतंत्रता बनाए रखी।

तदुपरांत 9वीं शताब्दी में विजयालय के नेतृत्व में **चोलों** का पुनरुत्थान हुआ। अपनी नई राजधानी तंजावुर से उन्होंने एक सशक्त और वैभवशाली राज्य की आधारशिला रखी। उनके पुत्र **आदित्य प्रथम** ने पल्लवों को पराजित कर राज्य का विस्तार किया तथा अधिकांश वर्तमान तमिलनाडु और दक्षिणी आंध्र प्रदेश को चोल शासन के अंतर्गत ले आए।

चोलों ने दक्षिण भारत के इतिहास के विशालतम साम्राज्यों में एक की स्थापना की। यह साम्राज्य अपने विस्तृत एवं कुशल प्रशासन, शक्तिशाली नौसेना तथा भव्य मंदिरों के लिए जाना जाता था। उन्होंने मूर्तिकला (चित्र 3.19 एवं 3.20) और वास्तुकला जैसी कलाओं को संरक्षण प्रदान किया तथा तमिल और संस्कृत दोनों भाषाओं के साहित्य को प्रोत्साहित किया। उनके अभिलेखों में दोनों भाषाओं का प्रयोग किया गया है। कावेरी डेल्टा की उर्वरता के साथ उन्नत सिंचाई प्रणालियों ने निरंतर कृषि उत्पादन को सुनिश्चित किया तथा साम्राज्य के वैभव में योगदान दिया। 13वीं शताब्दी तक दक्षिण भारत में चोलों का वर्चस्व रहा, हम अगले अध्याय में उनसे पुनः मिलेंगे।

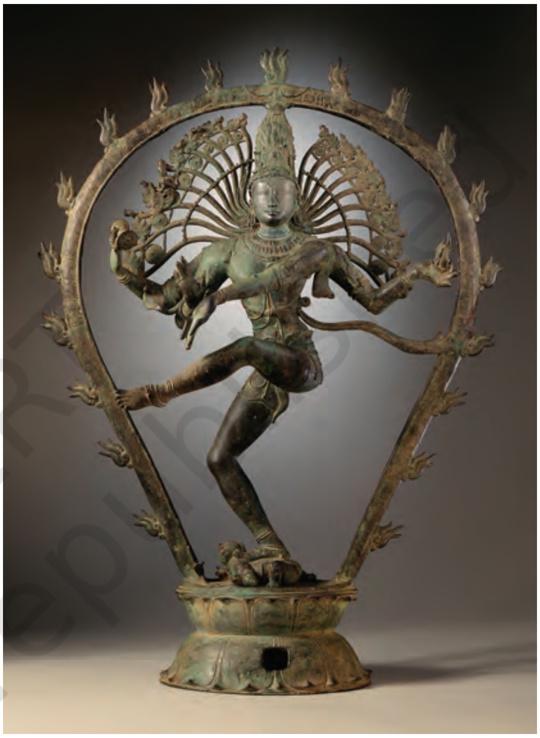

चित्र 3.20 — नटराज अर्थात 'नृत्य के स्वामी' की एक प्रारंभिक चोल कांस्य प्रतिमा। इसमें शिव के उस रूप को दर्शाया गया है जो सृष्टि और प्रलय का प्रतीक है।

इसे अनदेखा न करें

इस काल में अभिलेखों में संस्कृत तथा क्षेत्रीय भाषाओं का साथ-साथ प्रयोग होने लगा। भूमि अनुदानों में शासक और उसके वंश के इतिहास की बहुधा संस्कृत में प्रशंसा होती थी, जबकि अनुदान का कार्यकारी विवरण क्षेत्रीय भाषा में अभिलेखित किया जाता था। आपके विचार से इन अभिलेखों को दो भाषाओं में क्यों लिखा जाता था?

अन्य घटनाक्रम

अब तक हमने इस काल की प्रमुख राजनैतिक शक्तियों के उत्थान और पतन पर अधिक ध्यान दिया है। इस बीच समाज में क्या परिवर्तन हो रहे थे?

राज्य-व्यवस्था एवं प्रशासन

जैसा हमने कई बार देखा कि विशाल और एकीकृत साम्राज्यों के पतन से छोटे एवं विकेंद्रीकृत राज्यों का उदय हुआ। चालुक्य एवं राष्ट्रकूट जैसे राजाओं ने अपने मुख्य क्षेत्रों पर प्रत्यक्ष शासन किया किंतु अन्य क्षेत्रों पर सामंत नामक अधीनस्थ शासकों के द्वारा शासन किया जो जागीरदारों के समकक्ष थे। ये सामंत अत्यंत आवश्यक थे क्योंकि वे सेना का नेतृत्व करते थे और स्थानीय प्रशासन का संचालन करते थे। तथापि इनकी निष्ठा सदैव स्थिर नहीं होती थी विशेषतया उस समय जब उन्हें साम्राज्य का केंद्रीय शासन दुर्बल लगने लगता था। अंततः राष्ट्रकूट जैसे चालुक्यों के कुछ सामंत इतने शक्तिशाली हो गए कि अपने अधिपतियों को ही परास्त कर दिया।

प्रत्यक्ष रूप से शासित क्षेत्रों को प्रांतों (भुक्ति या राष्ट्र), जनपदों (मंडल) एवं ग्रामों में विभाजित किया जाता था जहाँ प्रत्येक स्तर पर विशिष्ट अधिकारी होते थे। ग्राम निम्नतम प्रशासनिक इकाई थी। प्रमुखों, लेखाकारों एवं स्थानीय समितियों द्वारा ग्रामों का संचालन किया जाता था और ग्राम मूलत: स्व-शासित थे।

चित्र 3.21 — *प्रारंभिक तमिल लिपि में उत्कीर्ण एक चोल अभिलेख (बृहदीश्वर मंदिर, तंजावुर)*

9वीं शताब्दी तक दक्षिण भारत में विभिन्न स्तरों पर सभाओं का उदय हुआ। उदाहरणार्थ, 10वीं शताब्दी के उत्तरमेरुर (या उतिरामेरुर) के चोल अभिलेख का स्मरण करें जिसमें ग्राम सभा के सदस्यों की चयन-प्रक्रिया का विवरण है (इस पाठ्यपुस्तक के भाग 1, अध्याय 'शासक से शासित तक' में देखें)। यह भारत में लगभग 1,500 वर्ष पूर्व जनपद काल से चली आ रही लोकतांत्रिक परंपराओं की दीर्घ निरंतरता को दर्शाता है।

व्यापार, अर्थव्यवस्था एवं नगरीकरण

इस काल में गुप्त वंश के समय से आरंभ हुई भूमि अनुदान व्यवस्था का व्यापक प्रसार हुआ। राजाओं, प्रमुखों, राजपरिवार के सदस्यों एवं अधीनस्थ शासकों ने व्यक्तियों, समुदायों एवं धार्मिक संस्थानों को भूमि देना आरंभ किया जिससे भूस्वामियों का एक नया वर्ग उत्पन्न हुआ। इनमें अनेक भूस्वामी स्वयं कृषि नहीं करते थे, जिससे यह संकेत मिलता है कि प्राय: शक्तिशाली मध्यस्थ कृषकों का शोषण करते थे जैसा कि कई ग्रंथों एवं अभिलेखों में संकेत किया गया है।

अनेक अनुदानों का उद्देश्य अनुपयुक्त भूमि को कृषि योग्य बनाना था ताकि कृषि का विकास और फसलों की विविधता हो। कृषि प्रौद्योगिकी पर शास्त्रीय ग्रंथ ('भारतीय कृषि की गाथा' अध्याय में देखें) इस युग में कृषि के महत्त्व को इंगित करते हैं। अनेक लघु स्तर तथा कुछ शासन द्वारा प्रायोजित बड़े स्तर के सिंचाई कार्य किए गए। उदाहरणार्थ, पल्लवों ने तमिलनाडु में अनेक जलाशय निर्मित करवाए जिनमें कुछ वर्तमान में भी उपयोग में हैं। अनेक अभिलेख किसी कूप, तालाब अथवा सरोवर की प्रायोजना का वर्णन करते हैं जिससे दानदाता की सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ती थी। बेहतर सिंचाई और कृषि-विकास से नकदी फसलों में वृद्धि हुई जिनसे कृषि-आधारित शिल्प एवं उद्योगों को बल मिला।

कृषि के साथ-साथ क्षेत्रीय व्यापारिक केंद्रों में व्यापार एवं बाजार भी विकसित हुए। लघु व्यापारियों ने स्थानीय व्यापार किया जबकि जहाजों के स्वामी व्यापारी दूरवर्ती व्यापार में संलग्न रहते थे। 8वीं शताब्दी से भारत के पश्चिमी तट से वर्तमान ईरान, इराक और अफ्रीका के पूर्वी तट के बंदरगाहों से सघन समुद्री व्यापार होता था जबकि भारत का पूर्वी तट श्रीलंका से, दक्षिण-पूर्व एशिया एवं चीनी बंदरगाहों (पिछले अध्याय में चित्र 2.2 देखें) तक संबंधित था।

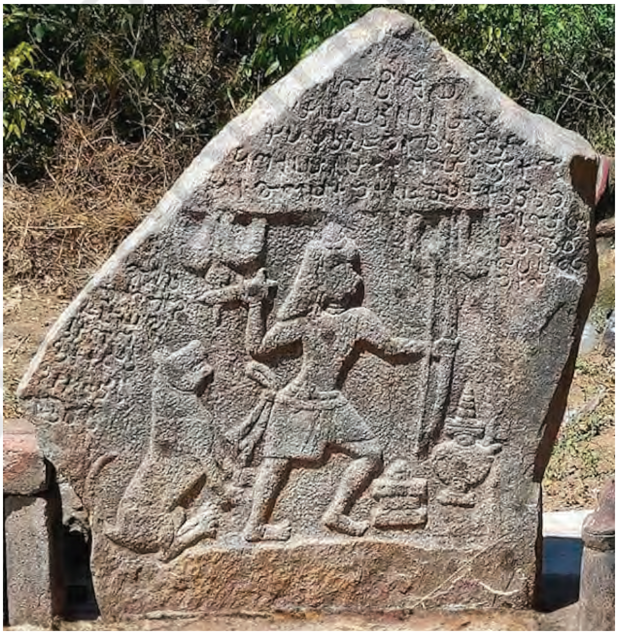

चित्र 3.22 — तमिलनाडु के एक ग्राम एडुतनूर में 7वीं शताब्दी का एक वीर पाषाण। इस अभिलेख में स्थानीय नायक की प्रशंसा की गई है, जो अपने निष्ठावान कुत्ते के साथ पशु-चोरों से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए (अभिलेख में नायक और उनके कुत्ते का नाम भी दिया गया है)।

चेर काल में इसी प्रकार की व्यापारिक सक्रियता पूर्वी तट पर थी। कई ताम्रपत्र अभिलेख पश्चिमी एशिया से ईसाई, मुसलमान एवं यहूदी व्यापारियों का उल्लेख करते हैं जिससे भारत के अंतरराष्ट्रीय व्यापार का प्रमुख केंद्र होने की सूचना प्राप्त होती है।

समग्र रूप में देखें तो इस काल में भारतीय समाज मुख्यतः ग्रामीण और कृषि प्रधान रहा। यद्यपि, कुछ इतिहासकारों ने इस काल में नगरों के ह्रास को इंगित किया है परंतु साक्ष्य एक अलग और अधिक जटिल चित्र दर्शाते हैं। उत्तर भारत में अधिकांश प्राचीन नगर व्यस्त रहे और नए नगरों का भी उदय हुआ। श्वेनजांग ने कौशांबी और श्रावस्ती के ह्रास का उल्लेख किया है किंतु स्थानेश्वर, कान्यकुब्ज एवं काशी जैसे समृद्ध नगरों का भी वर्णन किया है। दक्षिण भारत में नगरों का राजनैतिक, आर्थिक एवं धार्मिक केंद्रों के रूप में विकास जारी रहा और मंदिर वाणिज्य के केंद्र बने तथा बंदरगाह सामुद्रिक व्यापार के केंद्र का कार्य करते रहे।

पुनरावलोकन करें

हमने संक्षेप में स्थानीय व्यापारी श्रेणियों अथवा संगठनों का उदय देखा (इस पाठ्यपुस्तक के भाग 1 में 'साम्राज्यों का उदय' देखें)। वे एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे जिनके सदस्य व्यापारी, शिल्पकार और महाजन थे तथा धार्मिक और धर्मार्थ कार्यों को सहयोग देते रहे। अभिलेख उनकी संरचना और कार्यों का विस्तृत विवरण देते हैं। दक्षिण भारत में दो प्रमुख व्यापारिक संघ कार्यरत थे— एक तटीय एवं अंतर्देशीय व्यापार में संलग्न था और दूसरा विशालतम अंत:प्रादेशिक व्यापारिक संगठन बना।

सामाजिक जीवन

इस काल में भारतीय समाज अधिक जटिल होता गया और इसलिए इसे सामान्य विवरण द्वारा नहीं समझा जा सकता। परंपरागत जातियों की संख्या में वृद्धि हुई (इस पाठ्यपुस्तक के भाग 1 में 'नवारंभ— नगर एवं राज्य' देखें) तथा अनेक नई जातियाँ व्यवसाय अथवा क्षेत्र-आधारित गठित हुईं। इसने ऐसे समुदायों को जन्म दिया जिनमें अधिकांश लोग अपने समूह में वैवाहिक संबंध रखते थे। कुछ स्थानीय जनजातियाँ, सीमावर्ती समुदाय, विदेशी प्रवासी तथा व्यावसायिक या धार्मिक समूह वर्ण-जाति व्यवस्था में अवशोषित हो गए जबकि कुछ समुदाय (जैसे— विदेशी व्यापारी) बाहरी ही रहे।

जातियों से संबंधित अधिकांश सूचना ग्रंथों तथा कुछ अभिलेखों से प्राप्त होती है किंतु फिर भी अनेक रिक्त स्थान एवं अनुत्तरित प्रश्न शेष रहते हैं। इसके अतिरिक्त यह व्यवस्था विभिन्न क्षेत्रों में काफी भिन्न थी जिससे यह स्पष्ट होता है कि वर्ण और जाति की संरचना कठोर न होकर लचीली थी। उदाहरणार्थ कई स्रोत इंगित करते हैं कि पाल एवं काकतीय (जिनसे हम अगले अध्याय में मिलेंगे) जैसे शासक, मूलतः शूद्र वर्ण से संबंधित थे (श्रमिकों एवं शिल्पकारों आदि का वर्ण) किंतु कालांतर में उन्हें क्षत्रिय (शासकों एवं योद्धाओं का वर्ण) के रूप में स्वीकार किया जाने लगा।

इसी समय कुछ ग्रंथों में अस्पृश्य (स्पर्श न करने योग्य) जैसी कुछ शब्दावली मिलती है जिससे कुछ समुदायों को 'अपवित्र' बताते हुए भेदभाव दृष्टिगत होता है। यह अन्य स्रोतों द्वारा पुष्ट होता है, जैसे श्वेनजांग लिखते हैं, "कसाई, मछुआरे, नर्तक, जल्लाद एवं स्वच्छताकर्मी आदि इसी प्रकार के व्यक्तियों के आवास नगर से बाहर हैं... उनके भवनों की दीवारें छोटी हैं और इन भवनों से उपनगर निर्मित होते हैं।"

इन विभेदों के विद्यमान होते हुए भी विभिन्न वर्णों और जातियों के लोग बहुधा सहयोग से कार्य करते थे क्योंकि वे आर्थिक स्तर पर एक-दूसरे के श्रम एवं कार्यों पर निर्भर थे। आगे हम 'भक्ति आंदोलन' को भी पढ़ेंगे जिसने समाज के सभी स्तरों को स्पर्श किया और अनेक भक्ति संत शूद्र वर्ग से भी आए।

आइए विचार करें

एक व्यावसायिक वर्ग जाति में किस प्रकार परिवर्तित हो जाता है? यह प्रक्रिया जटिल होती थी और क्षेत्रानुसार भिन्न-भिन्न रूप ले सकती थी। एक उदाहरण देखते हैं—

कायस्थों को इतिहास में लेखकों या लिपिकों के रूप में जाना जाता है। आरंभ में सभी वर्णों के लिए एक व्यावसायिक वर्ग था। 10वीं शताब्दी में वे एक विशिष्ट जाति के रूप में स्थापित हो गए। बंगाल के कुछ भागों में ब्राह्मण उपनामों, जैसे— वसु, घोष, दत्त तथा दामा को कालांतर में कायस्थों से जोड़ा जाने लगा जिससे ब्राह्मण तथा ब्राह्मणेतर परिवारों के संलयन का संकेत प्राप्त होता है। समय के साथ मुख्यतः उन्होंने अपने ही समूह में विवाह करना प्रारंभ किया जिससे कायस्थ जाति का गठन हुआ।

स्त्रियों की सामाजिक स्थिति, क्षेत्र तथा सामाजिक स्तर के अनुसार व्यापक रूप से भिन्न थी। यह रोचक तथ्य ध्यान देने योग्य है कि बाणभट्ट ने अपने ग्रंथ *हर्षचरित* में स्त्रियों को अनेक आर्थिक एवं सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से संलग्न दर्शाया है। स्त्रियों को कृषि और शिल्पकर्म तथा राज-प्रासादों में मनोरंजक, संगीतज्ञ, कथावाचक एवं परिचारिकाओं के रूप में कार्य करते हुए वर्णित किया है। अनेक अभिलेखों में स्त्रियों को मंदिरों में दान देते हुए अथवा जल संरचनाओं को निर्मित कराते हुए भी वर्णित किया गया है।

इसे अनदेखा न करें

इस काल में अनेक रानियाँ भी सिंहासन पर आरुढ़ हुईं। यद्यपि अधिकांश राजवंश पुरुष वंशज (युवराज) को वरीयता देते थे, तथापि अनेक स्त्री-शासिकाएँ हुईं, जैसे वर्तमान उड़ीसा में भौम-कर राजवंश जिनमें 9वीं शताब्दी में 'त्रिभुवन महादेवी प्रथम' उल्लेखनीय थीं। उन्होंने राजवंश को सुदृढ़ किया, विद्रोहों का दमन किया, प्रभावशाली प्रशासनिक क्षमता का परिचय दिया, हिंदू एवं बौद्ध संस्थाओं तथा मंदिरों को संरक्षण प्रदान किया तथा 'परमभट्टारिका महाराजाधिराज त्रिभुवन महादेवी' की उपाधि से भूमि-अनुदान दिए। इस उपाधि का अर्थ है— 'परम सार्वभौम साम्राज्ञी, तीनों लोकों की महारानी'।

सांस्कृतिक जीवन

अब तक हमने अनेक शासकों को व्यक्तिगत झुकावों से परे हिंदू, बौद्ध या जैन धार्मिक परंपराओं को संरक्षण देते हुए देखा। इन धार्मिक परंपराओं में जटिल अंतर्क्रियाएँ थीं जहाँ केंद्रीभूत अवधारणा (जैसे— धर्म एवं कर्म), पावन स्थल, कलात्मक रूपांकन और कभी-कभी देवता भी समान थे। दक्षिण भारत में शैवों और जैनों के मध्य यदा-कदा प्रतिद्वंद्विता भी देखी गई। इसके पश्चात भी अधिकांश समय उनमें शांतिपूर्वक सह-अस्तित्व रहता था।

छठी शताब्दी के आस-पास तांत्रिक मतों का उदय हुआ जिनमें कर्मकांड, ध्यान, मंत्र एवं विशेषकर शक्ति जैसे शक्तिशाली देवी-देवताओं की उपासना पर बल दिया गया। तंत्रवाद के आंशिक प्रभाव में बौद्ध धर्म पूर्वी भारत में, विशेषतया पालों के काल में समृद्ध हुआ। बौद्धों के विहारों और विश्वविद्यालयों में एशिया के विभिन्न भागों से सहस्रों विद्वान आते रहे किंतु इस काल में अन्यत्र बौद्ध धर्म का ह्रास हुआ और मंदिर केंद्रित हिंदू एवं भक्ति परंपराओं में वृद्धि हुई।

शासकों और धनाढ्य व्यापारी समुदायों के सहयोग से जैन धर्म पश्चिमी भारत में तथा कर्नाटक में लोकप्रिय रहा। इस काल की अविस्मरणीय संरचनाओं में कर्नाटक में श्रवणबेलगोला स्थित एकाष्म बाहुबली प्रतिमा (चित्र 3.2) तथा एलोरा या बादामी के जैन कंदरा मंदिर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

पुराणों ने अपनी विस्तृत पौराणिक कथाओं एवं पावन भूगोल (इस पाठ्यपुस्तक के भाग 1 में 'भौगोलिक क्षेत्र कैसे पावन होते हैं'? देखें) से स्थानीय देवी-देवताओं तथा क्षेत्रीय कथाओं को अखिल भारतीय उपासना-परंपराओं, विशेषतया शिव, विष्णु, कृष्ण एवं अनेक देवियों की उपासना-परंपराओं से एकीकृत करने में सहायता की। इन परंपराओं ने वैदिक यज्ञों की अपेक्षा भक्ति (व्यक्तिगत उपासना) पर अधिक बल दिया तथा मंदिर, मठ और तीर्थ-स्थल इनके केंद्र बने।

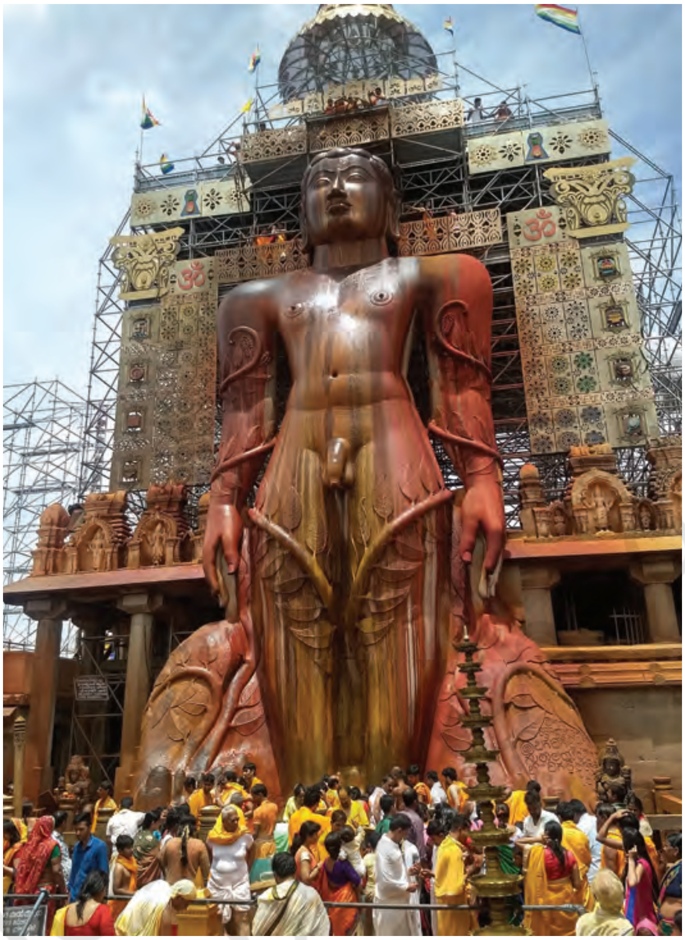

चित्र 3.23 — 2018 के एक विशेष उत्सव में श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) में बाहुबली की 10वीं शताब्दी की एकाष्म मूर्ति। बाहुबली एक पूज्य जैन व्यक्तित्व हैं जिन्हें यहाँ 12 वर्ष की साधना में लीन दर्शाया गया है (उनके पीछे चींटियों का पहाड़ और उनके पैरों और भुजाओं में चढ़ रहे पादपों को देखें)।

छठी शताब्दी से ये परंपराएँ 'भक्ति आंदोलन' में परिणत हो गईं। यद्यपि, किसी देवता के प्रति निष्ठा के रूप में भक्ति पूर्व में भी विद्यमान थी किंतु इस काल में यह एक सुसंगठित आंदोलन के स्थान पर समाज के प्रत्येक स्तर तथा संपूर्ण भारत में व्यापक रूप से प्रसारित हुआ। इसका आरंभिक प्रस्फुटन दक्षिण से हुआ जहाँ आराधकों तथा कवियों के दो समूहों ने तमिल में भक्ति साहित्य की रचना की जिसका बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। इनमें 12 आलवार थे जो विष्णु के आराधक थे। उनमें एक 'आण्डाल' नामक स्त्री भी थीं और 63 नायनार या नायनमार थे जो शिव के आराधक थे (जिनमें स्त्रियाँ सम्मिलित थी, चित्र 3.24)।

चित्र 3.24 — कराइकाल अम्मइयर, एक स्त्री नायनार संत की प्रतिमा, जो संभवतः छठी शताब्दी सां.सं. में थीं।

भारत के अन्य भागों में अनेक भक्ति संत हुए। वे विविध सामाजिक पृष्ठभूमियों से आए थे तथा उनकी काव्य रचनाएँ प्राय: क्षेत्रीय भाषाओं में रचित थीं। इन रचनाओं में ईश्वर के साथ प्रत्यक्ष एवं व्यक्तिगत संबंध की अनुभूति व्यक्त की गई जो स्त्री-पुरुष तथा सामाजिक विभेदों से पूर्णतया भिन्न थी तथा सभी के लिए सुलभ थी और इसने भारतीय समाज और साहित्य को गहराई से रूपांतरित किया। इसका प्रभाव वर्तमान में भी विद्यमान है।

गणितज्ञों एवं खगोलविदों की उज्ज्वल परंपरा

इस अध्याय में वर्णित काल विज्ञान और प्रौद्योगिकी की उत्कृष्ट प्रगति के लिए उल्लेखनीय है। आइए यहाँ हम गणित और खगोल विज्ञान को देखते हैं जिनके माध्यम से प्राचीन विश्व में भारत की प्रतिष्ठा स्थापित हुई।

598 सां.सं. में भीलमाल (गुर्जर-प्रतिहारों की प्रथम राजधानी) में जन्मे **ब्रह्मगुप्त** एक वृहद व्यक्तित्व थे जिनकी गणित और खगोल विज्ञान में उत्कृष्ट उपलब्धियाँ थीं। अपनी प्रमुख रचना *ब्रह्मस्फुटसिद्धांत* में उन्होंने शून्य, ऋणात्मक संख्याओं और भिन्न अंकों के साथ गणितीय नियमों को प्रतिपादित किया जिन्हें हम अब विद्यालय में सीखते हैं। उन्होंने कुछ समीकरणों को हल करने हेतु नई विधियाँ खोजीं और इस प्रकार उन्हें आधुनिक बीजगणित के संस्थापकों में गिना जाता है। उनके ग्रंथों का फारसी और उसके बाद लैटिन में अनुवाद किया गया जिससे अरब जगत और बाद में यूरोप में गणित के विकास में योगदान हुआ।

इस काल के अन्य प्रखर गणितज्ञों एवं खगोलविदों में **भास्कर प्रथम** थे जिन्होंने त्रिकोणमिति में अग्रणी कार्य किया तथा *आर्यभटीय* पर लंबी टीका लिखी; **विरहांक** ने प्रथम बार विरहांक-फिबोनाची अनुक्रम (जिसके विषय में आपने कक्षा 7 की गणित पाठ्यपुस्तक में पढ़ा है) स्थापित किया। एक जैन विद्वान **महावीर** (सहस्राब्दी पूर्व हुए महान जैन प्रवर्तक महावीर से भ्रमित न हों) राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष नृपतुंग की राजसभा में थे तथा उन्होंने खगोलविद्या से पृथक गणित का प्रथम ग्रंथ रचा। उन्हें छोड़कर इस काल

के अन्य गणितज्ञों ने खगोलीय गणना विधियों का शोधन किया ताकि किसी भी समय आकाश में ग्रहों की स्थितियों को ज्ञात किया जा सके।

उस काल के अनेक विद्वानों का उल्लेख किया जा सकता है। उनके पूर्ववर्तियों (उदाहरणार्थ इस पाठ्यपुस्तक के भाग 1 में 'गुप्तकाल' में आर्यभट और वाराहमिहिर देखें) और उत्तरवर्तियों (अगले अध्याय में भास्कराचार्य देखें) के साथ यह शताब्दियों की अद्वितीय ज्ञान-परंपरा है जिसके पीछे न केवल ज्ञानार्जन की जिज्ञासा थी अपितु विश्वसनीय पंचांग और सूर्यग्रहण एवं चंद्रग्रहण की सटीक भविष्यवाणी जैसे व्यावहारिक उद्देश्य भी थे। कला एवं साहित्य की भाँति ही राजकीय संरक्षण के बिना यह दीर्घकालिक बौद्धिक परंपरा संभव नहीं थी।

विदेशी आक्रमण

भारतीय शासकों ने शताब्दियों तक रणनैतिक उत्तर-पश्चिमी सीमांत पर सतर्क दृष्टि रखी। तथापि भारतीय उपमहाद्वीप ने अपने लंबे इतिहास में कई विदेशी आक्रमणों का सामना किया। इस पाठ्यपुस्तक के भाग 1 में हमने यूनानी, शक एवं कुषाणों के आक्रमणों के विषय में पढ़ा। अब हम हूणों और अरबों के आगमन के विषय में जानेंगे।

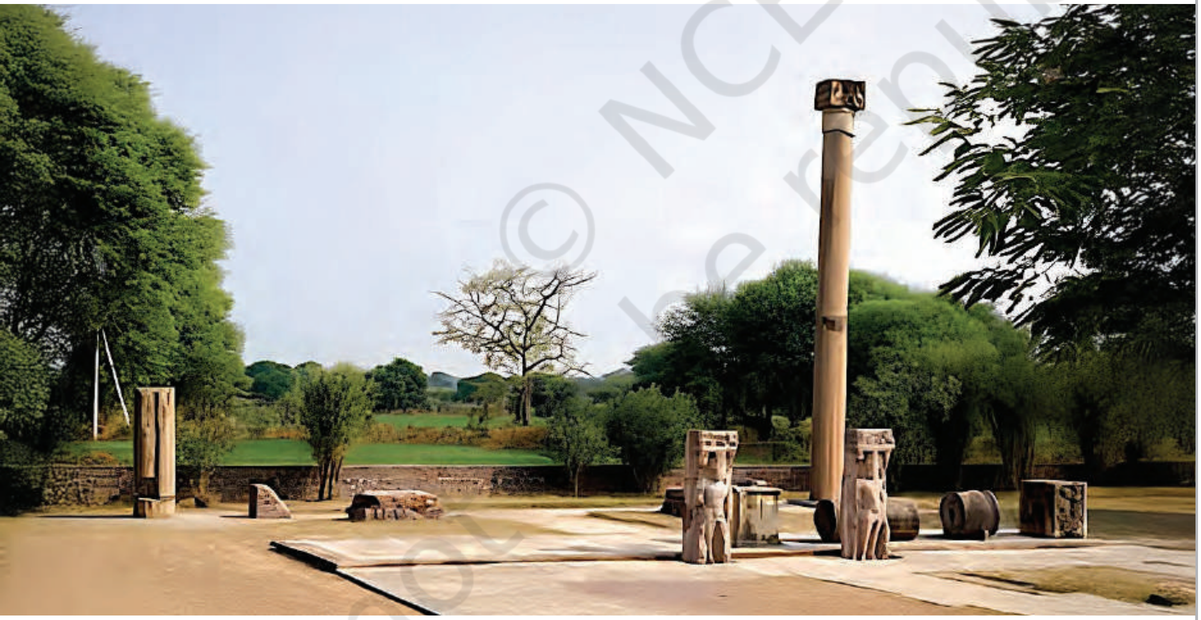

चित्र 3.25 — मंदसौर में औलिकर राजा यशोधर्म के विजयस्तंभ का प्रतिरूप (बाएँ स्तंभ का निचला भाग ही विद्यमान है) इन स्तंभों पर उत्कीर्ण अभिलेख एक हूण अधिपति पर उनकी विजय दर्शाते हैं।

हूणों की चुनौती

हमें समयकाल में पुनः वापस जाना होगा। हूण मध्य एशिया में चौथी शताब्दी से एक यायावर समूह थे। अश्वारोहण और धनुर्विद्या में उनकी असाधारण दक्षता और अत्यंत त्वरित आक्रमण शैली के कारण वे उग्र विजेता सिद्ध हुए और यूरोप के बड़े भाग को विजित किया। किंतु एक शताब्दी बाद उनका साम्राज्य विघटित हो गया। भारतीय साहित्य में उल्लिखित **हूणों** को प्राय: इन्हीं हूणों की एक शाखा माना जाता है। जैसा हम इस पाठ्यपुस्तक के भाग 1 में पढ़ चुके हैं कि उन्होंने शक्तिशाली गुप्त साम्राज्य को दुर्बल किया किंतु उस समय भारत पर उनका प्रभाव सीमित ही रहा।

छठी शताब्दी के आरंभ में दो हूण योद्धा अनेक राजाओं के विकट प्रतिरोध के उपरांत भी एक के बाद एक गंगा के मैदानों में प्रवेश कर चुके थे और अंततः उन्हें **औलिकर वंश** के राजाओं ने पराजित किया जिनकी राजधानी दशपुर थी जो वर्तमान में मध्य प्रदेश में मंदसौर (चित्र 3.25) है। इन क्रमिक पराजयों ने भारत में हूण शक्ति का पूर्णतः अंत कर दिया।

सातवीं शताब्दी तक हूण भारतीय समाज की संरचना में पूर्णत: समाहित हो चुके थे, कई हूण सैनिक बने तथा अन्य ने स्थानीय प्रशासन में कार्य किया। उदाहरणार्थ एक अभिलेख के अनुसार एक हूण एक मंदिर की प्रशासनिक परिषद (गोष्ठिका) में कार्यरत था। उन्होंने अपने अभिलेखों में संस्कृत और प्राकृत का प्रयोग किया और गुप्त-सदृश राजकीय मुद्रा-शैली एवं धार्मिक प्रतीकों का प्रयोग किया। उदाहरणार्थ, उनकी कुछ मुद्राएँ देवी लक्ष्मी और विष्णु या शिव के स्वरूपों को चिह्नित करती हैं।

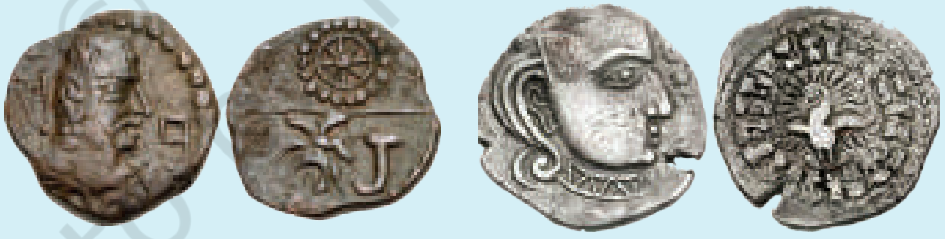

चित्र 3.26 — हूण शासक तोरमाण की एक मुद्रा जिसमें ब्राह्मी लिपि में उनका नाम 'तोरा' अंकित है (बाएँ)। गुप्त सम्राट स्कंदगुप्त की एक मुद्रा (दाएँ)।

आइए पता लगाएँ

आप इन मुद्राओं में किन विशेषताओं को पाते हैं (चित्र 3.26)? तोरमाण और स्कंदगुप्त की मुद्रा इतनी समान क्यों प्रतीत होती है? आप इससे क्या निष्कर्ष निकाल सकते हैं?

भारतीय तट पर अरबों का आगमन

इस्लाम के संस्थापक मुहम्मद के 632 सा.सं. में देहांत के कुछ वर्षों में ही यह नया धर्म एशिया और अफ्रीका में दूर तक फैल गया। 637 में भारत के पश्चिमी तट पर मुस्लिम अरबों द्वारा थाना (वर्तमान ठाणे), भरुकच्छ (वर्तमान भरुच) और देबल (सिंध नदी के डेल्टा पर एक बंदरगाह) पर नौसैनिक आक्रमण किए गए किंतु वे स्थायी क्षेत्रीय नियंत्रण स्थापित करने में सफल नहीं हो सके। अफगान राज्यों को जीतने के उनके प्रथम प्रयास भी विकट प्रतिरोध के कारण विफल रहे।

तथापि, वस्तुस्थिति तब परिवर्तित हुई, जब इराक के गवर्नर ने अपने भतीजे एवं दामाद **मुहम्मद बिन कासिम** के नेतृत्व में एक सेना भेजी। ये सैन्य दल सिंध में प्रवेश कर गए। पहले देबल पर अधिकार स्थापित किया गया जहाँ नवीं शताब्दी के इतिहासकार अल-बलाधुरी के अनुसार बिन कासिम ने "तीन दिनों तक भारतीय नागरिकों का नरसंहार किया" तथा एक "महान मंदिर... जिसमें प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित थीं, उसे नष्ट कर दिया।" वहाँ से बिन कासिम पूर्व की ओर चलते हुए अरोर (अलोर, सिंध में वर्तमान रोहड़ी) की ओर अग्रसर हुआ जो राजा दाहर की राजधानी थी। *चचनामा* (13वीं शताब्दी में एक पुराने अरबी वृत्तांत का फारसी अनुवाद) के अनुसार बिन कासिम ने दाहर से कहा, "मैं इस मजहबी जंग को आगे बढ़ाना अपना दायित्व समझता हूँ, जिसके लिए खुदा का हुक्म है। खुदा कुरान में कहता है— काफिरों के खिलाफ लड़ो..." एक भीषण युद्ध में हाथी पर आरूढ़ राजा दाहर एक तीर लगने से मारे गए जिसके उपरांत उसकी सेना पराजित हो गई।

प्रतिमा
पूजित विग्रह। यहूदी, ईसाई और इस्लाम की रूढ़िवादिता मूर्ति-पूजा की निंदा करती है। अत: भारतीय परिप्रेक्ष्य में 'मूर्ति' या 'विग्रह' अथवा 'प्रतिमा' जैसे भारतीय शब्दों का प्रयोग अधिक उपयुक्त माना जाता है।

काफिर
मध्यकालीन इस्लाम में काफिरों से आशय उन व्यक्तियों से था जो मुसलमान नहीं थे— विशेषत: हिंदू, बौद्ध एवं जैन।

आइए पता लगाएँ

चचनामा के अनुसार जब राजा दाहर की मृत्यु के पश्चात उनकी विधवा रानी ने वीरतापूर्वक प्रतिरोध किया और जब परिस्थिति निराशाजनक हो गई तब उन्होंने अन्य स्त्रियों के साथ आत्मोत्सर्ग किया। दूसरी रानी ने उनके कोष को वीर सैनिकों में वितरित कर दिया और उन्हें आक्रमणकारियों का सामना करने के लिए उत्साहित किया।

- → इससे आक्रमणों के प्रति स्थानीय जनता की प्रतिक्रिया के विषय में क्या संकेत प्राप्त होता है?
- → आपको क्या लगता है कि रानी ने अपना कोष वितरित करने का निर्णय क्यों लिया?
- → इससे युद्धों में स्त्रियों की भूमिका के विषय में क्या ज्ञात होता है?

कासिम की मृत्यु के दो वर्षों के भीतर भारतीय स्थानीय शासकों ने विद्रोह कर दिया और विजित प्रदेशों के अधिकांश भाग पर पुन: अधिकार कर लिया। अरबों ने सहजता से पराजय स्वीकार नहीं की और शीघ्र ही राजपूताना तथा मालवा के मध्य क्षेत्र की ओर अग्रसर हुए किंतु उनकी सफलता अल्पकालिक रही। ग्वालियर के एक अभिलेख में उल्लेख मिलता है कि पूर्व परिचित गुर्जर-प्रतिहार शासक नागभट्ट प्रथम ने किस प्रकार शक्तिशाली **म्लेच्छ** राजा की विशाल सेना को कुचल दिया।

म्लेच्छ
प्रारंभ में यह शब्द उन व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त होता था जो स्पष्ट रूप से नहीं बोल पाते थे अथवा वैदिक संस्कृति का अनुसरण नहीं करते थे। कालांतर में इस शब्द का प्रयोग विदेशियों के संदर्भ में होने लगा।

आइए विचार करें

9वीं शताब्दी का अरब व्यापारी और यात्री सुलेमान एक गुर्जर-प्रतिहार शासक पर यह टिप्पणी करता है— "यह राजा असंख्य सैन्यबल रखता है और किसी भी अन्य भारतीय राजकुमार के पास इतनी सशक्त अश्वसेना नहीं है। वह अरबों का विरोधी है.... उस जैसा मुहम्मदी मजहब का कोई बड़ा शत्रु नहीं.... उसके पास धन है और उसके ऊँट और अश्व असंख्य हैं.... भारत में कोई क्षेत्र लुटेरों से इतना सुरक्षित नहीं है" आपको क्या लगता है कि लेखक ने इस शासक को मुस्लिम मजहब का शत्रु क्यों बताया?

भारतीय शासकों के दृढ़ प्रतिरोध के कारण अरबों को लगातार निराशा मिलती रही। अरबों को पराजित करने के लिए भारतीय नरेशों ने कभी-कभी परस्पर गठबंधन भी किए। *राजतरंगिणी* के अनुसार कश्मीर के राजा 'ललितादित्य मुक्तापीड' (जिनसे हम पूर्व में मिल चुके हैं) ने एक अरब प्रमुख को तीन बार पराजित किया। भूगोलविद अल-इस्तखारी लिखता है कि लगातार तीन शताब्दियों के अथक प्रयासों के पश्चात भी भारत में अरब आधिपत्य केवल सिंध और पंजाब के छोटे राज्यों तक ही सीमित था। वहाँ पर भी वे तभी स्थापित रह पाए, जब अरबों ने मूर्ति-भंजन का परित्याग किया तथा राजनैतिक उद्देश्यों के लिए स्थानीय हिंदुओं एवं बौद्धों (जो सामूहिक रूप से 'बुद' कहलाते थे) का सहयोग लिया।

समग्र रूप में देखें तो अरबों की सिंध विजय का राजनैतिक एवं धार्मिक प्रभाव उनकी अन्य क्षेत्रों में विजय की तुलना में सीमित रहा, जबकि अन्य क्षेत्रों में इस्लाम ने बहुधा स्थानीय संस्थाओं का स्थान ले लिया और तब व्यापक स्तर पर धर्मांतरण हुए। सिंध में भले ही रणनैतिक कारणों से या विवशता में अरबों ने अपनी नीति में परिवर्तन किया— हिंदुओं और बौद्धों के मंदिरों के पुनर्निर्माण, उपासना की निरंतरता एवं मंदिरों के पुरोहितों को राजस्व में अपना अंश बनाए रखने की अनुमति दी गई।

यह ध्यान देने योग्य है कि इस्लाम के उदय से बहुत पहले भारत और अरब के बीच व्यापारिक संपर्क सुदृढ़ थे और मानसूनी हवाओं के साथ जहाज आते-जाते रहते थे। वस्तुत: मानसून शब्द अरबी भाषा के 'मौसिम' शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ ऋतु होता है। जहाज न केवल मसाले एवं वस्त्र ले जाते थे अपितु अरब सागर के पार विचारों, भाषाओं तथा कहानियों को भी ले गए।

आइए विचार करें

इस तालिका में तीन भाषाओं में एक जैसे उच्चारण वाले प्रचलित सामान्य दैनिक प्रयोग के शब्द दिए गए हैं। इन ध्वनियों की तुलना कर आप उन शब्दों को पहचान सकते हैं जो परस्पर संबद्ध या सभी तीनों भाषाओं में समान मूल के हैं। अपने शिक्षक की सहायता से इस अवलोकन का प्रयोग तालिका की पूर्ति हेतु कीजिए।

संस्कृत	अरबी	अंग्रेजी
	संदल	सैंडलवुड
ताम्बूल	*तांबुल*	
कर्पूर		केम्फर
पिप्पली	*फिलफिल*	

इसे अनदेखा न करें

संभवत: सबसे महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक आदान-प्रदान विज्ञान के क्षेत्र में है क्योंकि विशेषत: 9वीं शताब्दी में गणित, ज्योतिष एवं आयुर्वेद के संस्कृत ग्रंथों का बगदाद में अरबी में अनुवाद हुआ। अन्य अनेक वस्तुओं के साथ अरबों ने शून्य समेत भारत की दशमलव अंक प्रणाली को भारतीय अंकों के साथ अपनाया। उनके गणितज्ञों ने इस क्रांतिकारी अंक प्रणाली की भारतीय उत्पत्ति को स्वीकार किया किंतु अरबों द्वारा इसके यूरोप में पहुँचने के पश्चात इन अंकों को 'अरबी अंक' के नाम से जाना जाने लगा। वर्तमान में अनेक शब्दकोश 'हिंदू-अरबी अंक' शब्दावली रखते हैं। आप अपनी गणित की पाठ्यपुस्तकों में सांस्कृतिक संचार के इस महत्त्वपूर्ण उदाहरण के विषय में अध्ययन करेंगे।

समग्र अवलोकन

जैसा हमने आरंभ में कहा है कि इस अध्याय में इस उथल-पुथल के कालखंड के प्रमुख व्यक्तियों एवं घटनाक्रमों का संक्षिप्त सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है। इस अवधि में अनेक राजवंशों का एक-दूसरे से युद्ध करते हुए उत्थान एवं पतन हुआ और अनेक बार गठबंधन भी हुए। इनमें शक्तिशाली राज्यों में कुछ साम्राज्य के स्तर तक पहुँचे किंतु वे न तो भारत के वृहद भाग पर स्थानीय नियंत्रण स्थापित कर सके, न ही कुछ शताब्दियों से अधिक समय तक टिक पाए।

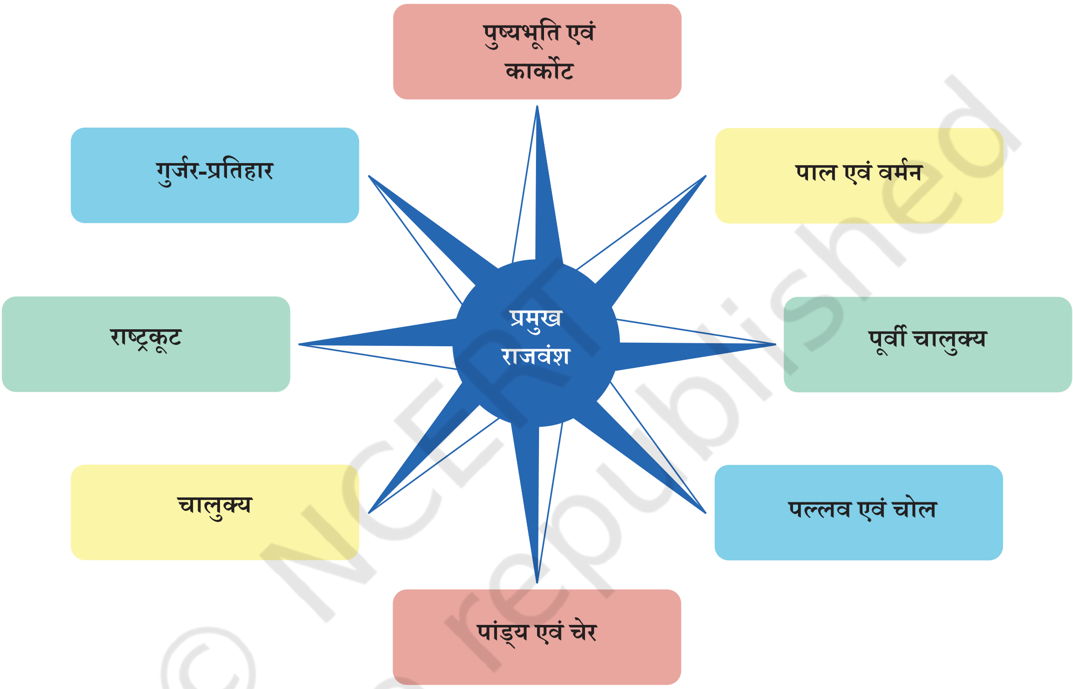
पुष्यभूति एवं कार्कोट
गुर्जर-प्रतिहार
पाल एवं वर्मन
राष्ट्रकूट
प्रमुख राजवंश
पूर्वी चालुक्य
चालुक्य
पल्लव एवं चोल
पांड्य एवं चेर

चित्र 3.27 — इस अध्याय में वर्णित मुख्य राजवंशों का एक सांकेतिक चित्रांकन जिसमें उनकी भौगोलिक स्थिति को यथासंभव रंग से दर्शाया गया है।

आइए विचार करें

हमने इस अध्याय में कुछ 12 राजवंशों को पढ़ा है। इसी काल में भारत में अन्य राजवंश भी विद्यमान थे, जैसे— भंज, चाप (चावड़ा), गुहिल, कलचुरि, कदंब, मैत्रक, मौखरि, सैंधव, अभिहार, सोमवंशी, तोमर, उत्पल, परमार, चाहमान तथा गंग। इनमें से अधिकांश की अनेक शाखाएँ थीं। आपको इन्हें याद करने की आवश्यकता नहीं है (केवल अंतिम तीन से हम अगले अध्याय में मिलेंगे)। इस सूची का उद्देश्य केवल यह बोध कराना है कि हमारे देश का इतिहास कितनी गहराई एवं वैभव से परिपूर्ण रहा है।

यह काल परिवर्तन और क्षेत्रीय सुदृढ़ीकरण का भी युग था। इस काल में ऐतिहासिक रिक्तता न होकर नए सामाजिक एवं राजनैतिक समूहों का गतिशील एकीकरण देखा गया। संस्कृत और क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य का उत्कर्ष हुआ तथा मंदिर वास्तुकला एवं शिल्पकला में बहुत प्रगति हुई। पुरातन नींवों पर नई दार्शनिक चिंतन-परंपराएँ और नूतन धार्मिक आचार प्रणालियों का प्रसार हुआ जिनसे उपमहाद्वीप का सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक परिदृश्य पुनर्परिभाषित एवं समृद्ध हुआ। अंततः भारत ने विदेशी आक्रमणों के सम्मुख भी पुनरुत्थान एवं राजनैतिक पुनर्गठन की क्षमता का परिचय दिया।

आगे बढ़ने से पहले...

- गुप्त साम्राज्य के पतन के परिणामस्वरूप शक्तिशाली क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ। कोई भी एक शक्ति चिरकालिक वर्चस्व नहीं रख पाई क्योंकि प्रतिद्वंद्वी राज्यों में तुलनात्मक सैन्यबल, प्रशासनिक व्यवस्थाएँ एवं रणनैतिक दृष्टिकोण विद्यमान थे।
- भारत आने वाले विदेशी आक्रांता प्राय: भारत की सांस्कृतिक परंपराओं को आत्मसात कर अपना लेते थे किंतु इस्लाम के आगमन के साथ स्थिति में परिवर्तन आया। जहाँ अरब सेनाओं को अन्यत्र सैन्य सफलता मिली, वहीं भारतीय उपमहाद्वीप में प्रथम बार महत्त्वपूर्ण स्थान स्थापित करने से पूर्व अरबों को लंबे समय तक संघर्ष करना पड़ा।
- अपने स्वयं के झुकावों के मध्य भी शासकों ने सामान्यत: हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म को संरक्षण देते हुए एक जीवंत सांस्कृतिक बहुलवाद को प्रोत्साहित किया। इस काल में भक्ति परंपरा का उदय हुआ जो शीघ्र ही समस्त भारत में फैल गई।
- इस काल में भाषा, साहित्य, कला, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उत्कृष्ट उपलब्धियाँ प्राप्त हुईं।
- जातियों की वृद्धि से समाज की जटिलता में वृद्धि हुई, किंतु वर्ण एवं जाति व्यवस्था लचीली रही।
- इस काल में व्यापार ने स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं को भारत और विदेशों के दूरस्थ बाजारों से जोड़ा जिससे नगरों का विकास हुआ, सांस्कृतिक आदान-प्रदान बढ़ा एवं भारत का विस्तृत व्यापार संजाल बना।

प्रश्न और क्रियाकलाप

1. यदि आप पालों, प्रतिहारों और राष्ट्रकूटों के संघर्ष के समय कन्नौज में प्रवास करते तो आपका दैनिक जीवन किस प्रकार प्रभावित होता? शासकों के विषय में आपके आकलन को इसने कैसे बदला होता? कांचीपुरम में रह रहे अपने एक मित्र को इस विषय में एक पत्र लिखिए।

2. इस काल में सम्राटों और राजाओं का नियंत्रण मुख्य क्षेत्रों पर ही होता था और अन्य क्षेत्रों का शासन अधीनस्थ प्रमुखों के द्वारा होता था। ऐसी व्यवस्था के क्या लाभ एवं क्या चुनौतियाँ रही होंगी?
3. हूणों एवं अरबों के आक्रमण अपने उद्‍देश्यों, कार्यविधियों और उपमहाद्वीप पर पड़े प्रभावों की दृष्टि से किस प्रकार भिन्न थे? एक लेख तैयार कीजिए, चर्चा कीजिए और कक्षा में प्रस्तुत कीजिए।
4. कल्पना कीजिए कि आप प्रयाग महासभा के एक सामान्य नागरिक हैं। आपको हर्ष द्वारा अपनी अधिकांश संपदा दान करते हुए कैसा लगा?
5. समूह बनाइए। प्रत्येक समूह में एक आलवार और एक नायनार का चयन कीजिए और उनके जीवन पर आधारित एक जीवनी, पोस्टर अथवा पुस्तिका तैयार कीजिए। इसमें उनकी जीवन-गाथाएँ एवं रचनाओं से एक या दो प्रतिनिधि कविताएँ (अनुवाद सहित) भी सम्मिलित कीजिए।
6. आपने ध्यान दिया होगा कि हमारे मानचित्रों में राज्यों की राजधानी और मुख्य नगरों के केवल प्राचीन नाम दर्शाए गए हैं। एक पेंसिल लेकर उनके मूल नामों के साथ उनके आधुनिक नाम लिखिए। भारत का वर्तमान मानचित्र लेकर इन नगरों को उसमें ढूँढ़िए।
7. शासक अथवा राजवंश का मिलान उसके नगर से कीजिए—

क. राष्ट्रकूट	i. कांची
ख. गुर्जर-प्रतिहार	ii. तंजावुर
ग. चोल	iii. मान्यखेत
घ. हर्षवर्धन	iv. उज्जयिनी
ङ. पल्लव	v. कान्यकुब्ज